

**TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176635

UNIVERSAL
LIBRARY

नवाब लटकन

[हास्य-रस-संबंधी उपन्यास]

लेखक

श्रीयुत 'अरुण' बी० ए०

['अमृत, कंट्रोल आदि पुस्तकों के रचयिता]

—:❀:—

मिळने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, लाटूश रोड

लखनऊ

चुकीया छति]

सं० २००३ वि०

[मूल्य रुजिस्द २]

प्रकाशक
श्रीदुलारेबाबू
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवाली, दिल्ली
२. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, क्रास्थवेट रोड, इलाहाबाद
३. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
४. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
५. साहित्य-रत्न-भंडार, सिविल लाइंस, आगरा
६. हिंदी-भवन, अस्पताल-रोड, जहौर
७. एन० एम्० भटनागर ऐंड ब्रादर्स, उदयपुर
८. दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास

नोट — हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं । जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें । हम उनके वहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे । हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए ।

मुद्रक
श्रीदुलारेबाबू
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

निवेदन

हिंदी के प्रसिद्ध लेखक श्रीलक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरूण' का यह हास्य-रस-संबंधी उपन्यास है। आशा है, उनके कंट्रोल-उपन्यास की तरह इसे भी हिंदी-संसार तेज़ी से अपनाएगा।

यह तो आप-जैसे विद्वान् को बतलाने की ज़रूरत नहीं कि किसी भी देश के साहित्य के विकास पर ही राष्ट्र-निर्माण का कार्य होता है। ज्यों-ज्यों हमारा साहित्य बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों हम उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ते चले जायँगे। इसलिये प्रत्येक भारतवासी महोदय का कर्तव्य है कि अपनी आमदनी का १०.१० हिस्सा लगाकर अपने घर में घरेलू पुस्तकालय खोलें, जिसमें उनका घर, पड़ोस और मुहल्ला ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो सके। अपने इष्ट-मित्रों, पास-पड़ोसियों और नगर-निवासियों में अपनी राष्ट्र-भाषा और मातृभाषा हिंदी के प्रति प्रेम जगाने की कृपा कीजिए। हमसे गंगा-पुस्तकमाला के स्थायी ग्राहक बनने के प्रतिज्ञा-पत्र मँगाकर, भरकर और भरवाकर भिजवाइए।

राष्ट्र-भाषा 'भारती' (हिंदी) की पुष्टि-प्रगति और प्रचार-प्रसार के इस पुनीत कार्य में हमारा हाथ बँटाइए। भारत-भर में देव-मंदिरों की तरह भारती-मंदिर—घरेलू पुस्तकालय भी खुलवाइए। १,००,१०० घरेलू पुस्तकालय खुल ही जाने चाहिए। इस संबंध में हमारी हिंदी-प्रसार-योजना और लाइब्रेरी-योजना मँगा लीजिए। फिर गंगा-पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहक बन जाइए।

सैकड़ों क्या, हजारों हिंदी-भाषी रईस भारतवर्ष में हैं, पर उनका ध्यान हिंदी की पुष्टि-प्रगति की ओर नहीं है। यदि वे चाहें, तो अपने

(४)

किसी प्रिय के नाम से एक-एक विषय की पुस्तकमाला हमारे सहयोग से हिंदी में निकलवा सकते हैं । उन्हें हमसे पत्र-व्यवहार करके हिंदी-माता की सेवा और अपने प्रिय का नाम चिरस्थायी करना चाहिए । हम उनकी सेवा करने को प्रस्तुत हैं ।

कवि-कुटीर, लखनऊ }
२० । ४ । ४६ }

दुलारेलाल

दो आदमी गुईन-रोड पर बातें करते हुए जा रहे थे।
पंडित राधेश्यामजी सामने से आते हुए बोले—“भाई
नब्बन ! कहाँ मटरगश्त में निकले हो ?”

“यों ही घूम रहे हैं भाई राधेश्याम !” नब्बन ने ज़रा
मुसकराकर कहा —“आपको तो सारी कैफ़ियत मालूम है—
रोज़गार चलता नहीं, गिरानी का ज़माना ठहरा, मगर पेट
की खातिर कुछ तो किया जाय।”

“हाँ, गिरानी तो भारे लेती है, मगर तुम तो अकेले ही
हो, तुम्हें एक अपने पेट की खातिर भी चार पैसे नहीं मिलते
क्या ?”

“जिसे मुफ़्त ही खाने को मिल जाय, मेहनत करे उसकी
बला।” नब्बन के साथी ने कहा।

“तो ऐसा कौन-सा ज़रिया है भाई !” पं० राधेश्याम ने
मुसकराकर पूछा—“ज़रा हमें भी वह रास्ता बताओ।”

“आपको नहीं मालूम है क्या ?” नब्बन के साथी ने
कहा—“आजकल तो भाई नब्बन नवाब लटकन के हम-
निवाला हमप्याला हो रहे हैं, फिर इन्हें क्या फ़िक्र ?”

“यह बात है दोस्त !” राधेश्याम ने नब्बन की बाँह

पकड़ते हुए कहा—“तो क्या वहाँ तुम्हारी गहरी पहुँच है ?”

“वह बहुत बड़े आदमी हैं, आप भी जानते हैं ।” नब्बन ने जवाब दिया—“मगर हैं बड़े यादवाश, हम-जैसे गरीबों पर बड़े मेहरबान हैं ।”

“क्या दोनो टाइम जाते हो ?”

“हाँ, दोनो वक़्त वहीं खाता हूँ ।”

“एक ज़रा मेरा भी कुछ काम है, करा दोगे ?”

“क्या है ?”

लौंडे की नौकरी की फ़िक्र है । बिना वसीला अच्छी नौकरी मिलती नहीं । उनका अक़सरो से वास्ता पड़ता है । शायद कोई ज़रिया हो ही ।”

“अरे ! इसके लिये क्या कहते हो यार ! नवाब लटकन और उनका वास्ता न हो ! ग़ैरमुमकिन !”

“तो फिर जिस दिन कहो, चलें ।”

“जिस दिन के लिये क्या, तुम आज ही चलो ।”

“अच्छा तो चलो, सलाम कर ही आवें ।”

“हाँ-हाँ, बड़े आदमियों से मिलना-जुलना बड़ा कारामद् है, चलो ।”

नब्बन और राधेश्याम, दोनो ही नवाब लटकन की कोठी की ओर चल पड़े । जब पहुँचे, तो साहब - सलामत होने के बाद बैठे, और इधर-उधर की गप-शप शुरू हो गई ।

बातचीत के ही सिलसिले में नब्बन ने कहा—“नवाब साहब ! इनका लड़का बी० ए० पास हो गया है । कोई मौका हो, तो उसे नौकर क्यों नहीं करा देते ।”

“मौके रोज़ ही आते रहते हैं । यह न कभी मुझसे मिले, न कोई ऐसा तज़क़िरा ही किया । कहो भाई राधेश्याम ! तुमने लौंडे की ऐप्लीकेशन दिलवाई है कहीं क्या ?”

“जी नहीं । अभी कोई मौका समझ में नहीं आया ।”

“तो ख़ैर, किसी मौके से उसकी एक अरज़ी कहीं चिपका दो, और आकर मुझे इत्तिला दो, फिर देखा जायगा । खुदा ने चाहा, तो बहुत जल्द बरसरे रोज़गार हो जायगा ।”

पं० राधेश्याम को मानो झूबते में तिनके का सहारा मिला । ज़रा मुसकराकर बोले—“इतनी तो मुझे आपकी ज़ात से उम्मीद थी ही ।”

“हाँ-हाँ, तुम हमेशा मुझसे उम्मीद रखो ।”

राधेश्यामजी खुश होकर वहाँ से उठे, और सीधे अपने घर चले आए । अब वह सोचने लगे कि एक दरख़वास्त लौंडे की दिलवानी ज़रूर चाहिए ।

[२]

समय की गति बड़ी प्रबल है। यह कभी एक स्थिति में नहीं रहती। एक समय था, जब लखनऊ के नवाब सचमुच नवाब थे, पर अब वह समय आ गया कि उसी नवाब-घराने की हस्तियाँ फाक्रेमस्त हैं। पेट की खातिर दर-बदर ठोकें खाती फिर रही हैं। यही कारण है कि अब फाक्रामस्तों और कँगलों को लोग मञ्चाक में 'लखनऊ के नवाब' के नाम से पुकारने लगे हैं।

इसी नवाब-घराने में नवाब शफीअहमद भी हुए, जिन्होंने परमात्मा की असीम कृपा से फाक्रामस्ती तो न उठाई, आनंद से जीवन बिताया, धनोपार्जन भी खूब किया, मगर ये बड़े काइयाँ। अपने काइयाँपन से कभी न चूकते थे। चरित्र-हीन होते हुए भी उन्होंने धन-संग्रह करके कुछ थोड़ी-सी जमींदारी खरीद ली थी, जिसकी सालाना आमदनी लगभग ५००० थी। बड़े चैन से गुज़र हाता रही। धीरे-धीरे अँगरेज़ी ज़माने ने जोर पकड़ा। अब उन्हें भी खासी चिंता अपने लड़के अब्दुलक़दीर को अँगरेज़ी पढ़ाने की सवार हुई। उसे सब लोग प्यार में नवाब लटकन कहते थे, क्योंकि बचपन में उसके कान में लटकन पड़ा रहता था।

जिस साल नवाब शफीअहमद का इंतक़ाल हुआ, उसी

साल अब्दुलक़दीर ने मैट्रिक पास कर लेने के बाद पढ़ना छोड़ दिया, और घर तथा ज़मींदारी की देख-रेख का भार उनके सिर आ पड़ा।

यों ही दिन, रात, महीने और वर्ष बीतने लग। ईश्वर की असीम कृपा के फल-स्वरूप नवाब अब्दुलक़दीर उर्फ लटकन का जीवन आनंद से गुज़रने लगा।

नवाब साहब ने पैत्रिक संपत्ति पाने के साथ-साथ अपने पिता के आचरण को भी अपनाया था, खूब अरनाया था। भला, वह ऐसा क्यों न करते, अपने बाप के असली बेटे थे ही ! तब क्या उनका बाप के समान अधिकारों पर हक़ न था ? औलाद को मा-बाप से और दो अंगुल आगे बढ़कर चलना चाहिए, जिससे बाप का नाम रोशन रहे ! नवाब लटकन अक्सर सोचा करते थे कि करीमबख्श को मेरे वालिद बुज़ुर्गवार ने नौकर रखवा उसकी बीवी मेरे घर में काम करती रही, करीमबख्श बाहर था। आखिरकार यही हुआ कि उसकी बीवी वालिद साहब की मक़बूज़ा बीवी बन गई। अब तो वे दोनों मर चुके हैं। उनका लौंडा नज़ीरा है। वह मेरे घर में ही पला, इतना बड़ा हुआ। मैंने उसकी शादी भी कर दी, गौना भी हो गया। मुनीरन कहती है—“दुलहिन क्या है, बस गुड़िया है, गुड़िया ! मानो साँचे में ढाली गई है।” तब मैं उस पर भी अपना क़ब्ज़ा क्यों न करूँ ?

असंयमता तथा अक्रियशीलता (आरामतलबी) ने विचार-धारा में अवरोध पैदा करके उसे शिथिल बना दिया, जिसके कारण विचार-प्रवाह में बड़े-बड़े भँवर पड़ गए। जिसे देखिए, वही इन भँवरों में चक्कर खाता, डूबता, उतराता दिखाई दे रहा है।

नियम है कि जब पुरुष-समाज असंयमी है, तो स्त्री-समाज असंयमी अवश्य बनेगा। यदि हम यह चाहें कि हमारी स्त्रियाँ सच्चरित्रा हों, सती-साध्वी हों, तो पुरुष-समाज को सचेत होकर उच्छ्रंखलता के भँवर से बचने की प्रबल आवश्यकता होगी।

मगर हमारे नवाब साहब को इसकी क्या परवा ! स्त्रियाँ बनें या बिगड़ें, उन्हें अपने आमोद-प्रमोद से गारज है। रोज ही एक-न-एक तवायफ़ उनके मनोरंजन की वस्तु बनकर सैकड़ों रुपयों पर हाथ साफ़ करती थी। फिर लखनऊ-ऐसे शहर में इसकी कमी भी क्या थी ? हालाँकि नवाब साहब की उम्र इस समय ४० वर्ष के लगभग पहुँच चुकी थी, और ईश्वर की दया से तीन-चार बच्चे भी थे। लड़का १५ साल का हो चुका था, और अँगरेज़ी शिक्षा प्राप्त कर रहा था। एक लड़की इससे बड़ी थी। वह भी पढ़ रही थी। नवाब साहब की इच्छाएँ इतनी प्रबल थीं कि इस उम्र में पहुँचने पर भी दूसरी शादी कर बैठे थे। इस नई सहयोगिनी की उम्र भी इस समय २१ वर्ष की थी और थी मानो साँचे में ढली

हुई पूरी योरपियन लेडी। उसे था न किसी का डर न खौफ़। बिलकुल आजाद। नवाब साहब ने उसके रंग-रूप पर फिसलकर शादी कर ली थी।

लेडी साहबा ने नज़ीरा को अपनी सेवा में रहने के लिये चुन लिया। किसी की क्या ताब कि उसे कोई उसके पास आने-जाने से रोक सके। जब चाहती, नज़ीरा को साथ लेकर टहलने चली जाती, जब चाहती, साथ लेकर सिनेमा देखने निकल जाती। उसे दिन-रात किसी समय भी बाहर-भीतर जाने-आने में कोई डर न था।

नवाब साहब की लड़की नज़मा भी अपनी विमाता और नज़ीरा के साथ घूमने और सिनेमा देखने जाया करती थी। नज़मा पर भी अँगरेज़ी शिक्षा का प्रभाव पड़ चुका था, तब वह किसी के बंधन में रहना पसंद भी करती कैसे? यों ही दिन गुज़रने लगे।

उस रोज़—

नवाब साहब की यार-मंडली जमा हुई। खैरु बोला—
“आपने सुना नवाब साहब ! मियाँ शब्बीरहसन ‘खान-
बहादुर’ हो गए !”

“हाँ, उनकी खानबहादुरी की शोहरत तो आज सारे
शहर में है।” नब्बन ने कहा।

“सुन तो मैं भी रहा हूँ, मगर हो कैसे गए ?” नवाब
साहब ने सवाल किया।

“हाँ, तरकीब बताओ खैरु ! क्या अच्छा हो, हमारे नवाब
साहब भी खानबहादुर हो जायँ।” नब्बन ने कहा।

“बताओ भाई खुदाबख्श ! तुम्हीं बताओ।” खैरु ने
कहा।

“मुझे तो कुछ मालूम नहीं।” खुदाबख्श ने शुबराती की
ओर देखकर कहा—“बाज़ार में तो बड़ी-बड़ी बातें करते
थे, अब बोलते क्यों नहीं।”

“तरकीब तो मुझे नहीं मालूम है भाई, हाँ, इतना जानता
हूँ कि खानबहादुरी है चीज़ बड़ी, और उसके पाने की
कोशिश करनी चाहिए।”

इसी वक़्त सगीर हुसैन आ गया, जो नवाब साहब के

साथ का पढ़ा और बड़ा चलता-पुरजा था। आकर बोला—
“मुझसे पूछो तरकीब। तुम सब क्या जानो।” सगारहुसैन
ने बैठते हुए कहा—“अगर खुदा ने चाहा, तो बहुत जल्द
नवाब साहब भा खानबहादुर हो जायँगे।”

“कैसे ?” नवाब लटकन ने उत्सुकता से उसकी तरफ
देखकर पूछा।

“बस, अफसर लोगों को दावतें दीजिए, चंदों में रकम
खर्च कीजिए, तो खानबहादुरी आपके खूबसूरत हाथ जाड़े
खड़ी दिखाई देगी !”

नवाब साहब बोले—“बस, यही ठीक है। मुझे भी याद
पड़ता है कि शम्शेरहसन ने लाट साहब को दावत दी थी
एक दफा।”

उसी दिन से नवाब साहब खानबहादुरी के सुनहले खवाब
देखने लगे, और उनके चापलूस यार-दोस्तों की तजवीजें
चलने लगीं, उन निठल्लों को कोई काम तो था ही नहीं, नवाब
साहब के पास ही दिन-रात पड़े रहते और टुकड़े तोड़ा
करते।

सरकारी खिताब पाने के शौक ने नवाब साहब को अंधा
बना दिया। वह इसी धुन में लग गए। धन को पानी की
तरह बहा देने का फ़ैसला करके हुक्मामों को दावतों पर
दावतें देने लगे। जब कभी चंदे का सवाल आता, तो
नवाब साहब उस मैदान में सबसे आगे ही दिखाई पड़ते

ये । इस प्रकार उन्होंने मुकामी अफसरों को खूब मुट्टी में कर लिया ।

आज भी वह इसी धुन में हैं । हिज एकसी लेंसी गवर्नर साहब बहादुर इलाहाबाद से लखनऊ आनेवाले हैं । उनकी दावत करना जरूरी है । पहले की दावतों का प्रबंध इन्हीं के सहपाठी, सगीरहुसैन द्वारा हुआ था, और बहुत अच्छा रहा था, किंतु वह इस अवसर पर यहाँ नहीं हैं । कदाचित् कहीं बाहर गए हैं । यही कारण है कि कमरा सजाने का काम मुंशी नासिरअली पर छोड़ रक्खा है । परसों लाट साहब की दावत है । आज से ही अगर प्रबंध न हुआ, तो ठीक समय पर कैसे हो सकेगा ? वह इन्हीं विचारों में पड़े थे कि मुंशी नासिरअली ने आकर कहा—“हुजूर ! कमरे का मुलाहिजा क्रमा लीजिएगा चलकर ।”

“अच्छा, चलता हूँ ।” नवाब साहब कुरसी से उठकर चलते हुए बोले—“दरी, कुरसी, मेज, अल्मारी वगैरा सभी क्रायदे से लग गई ?”

“हाँ, हुजूर ! मैंने तो अपनी समझ से सब ठीक कर दिया है ।”

दोनों उस कमरे में पहुँचे, जो दावत के लिये सजाया गया था । देखते ही नवाब साहब की तयोरियाँ चढ़ गई, बोले—“नासिरअली ! तुम तो निरे बुद्धू हो । न-जाने तुम्हें अक्ल कब आएगी ! कब्र में पहुँचने पर ? लाट साहब

की दावत के लिये कमरे की यह सजावट ? एक मेज और उसके इर्द-गिर्द सिर्फ चार कुरसियाँ ? ग़ज़ब किया तुमने ! सारा वक़्त बेकार खो दिया ।”

ठीक इसी समय उन्होंने देखा कि सामने से सगीरहुसैन चले आ रहे हैं । उन्हें देखते ही नवाब साहब का पारा जो ११० डिग्री पर चढ़ गया था, धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा । जब वह और करीब आ गए, तो नवाब मुस्कराते हुए बोले—“आओ जी ! बड़े वक़्त से आए ।”

सगीरहुसैन भी कमरे में दाख़िल होते हुए बोले—“हाँ, मैं अभी इसी गाड़ी से आया हूँ । मालूम हुआ कि आपने मुझे आज सबेरे याद किया था । बस, मैं बग़ैर नाशता किए ही चला आया । मगर दावत के लिये कमरे की यह सजावट ?”

“अरे भाई ! मैं अभी मुंशीजी से इसी बात पर झुँझला रहा था कि तुम दिखाई पड़े । अब जैसा मुनासिब समझो, इंतज़ाम करो ।”

“मेरी राय में फ़र्श पर दरी न होनी चाहिए । यह तो भद्दी है, और बहुत ही भद्दी ।”

“फिर, कैसा फ़र्श हो ?”

“ऊनी क़ालीन बिछाई जाय, तो बेहतर होगा । भई ! यह भी तो सोचो, ‘डो-सी’ या ‘सी’ की नहीं, बल्कि दावत है लाट साहब की ।” सगीरहुसैन ने मेज पर हाथ मारते हुए कहा ।

“अच्छा, ऊनी कालीन सही, मगर मेरे यहाँ तो है नहीं।”

“यह आपने एक ही कही। क्या बाजार में कालीन नहीं ? या आपके पास पैसा नहीं ?”

“अच्छा खैर, नया खरीद लो। कुछ मुज्जायका नहीं। और हाँ, बाजार जाकर अपनी मरजी का खरीद लाओ।”

“अच्छा, मैं बाजार जाता हूँ, और आप छोटी-छोटी चार मेजें यहाँ बिछाने के लिये और मँगवा लें। मगर सब एक ही डिजाइन की हों। लाइए, मुझे रुपए दीजिए।”

“कितना दे दूँ ?”

“हजार-बारह सौ से कम में तो मिलती नहीं कालीन। अब आप जो मुनाख़िब समझें, दे दें।”

नवाब साहब ने मुं० नासिरअली को हुक्म दिया कि वह फौरन् ही १२००) निकालकर सगीरहुसैन को दे दें। निदान, सगीरहुसैन रुपया लेकर बाजार आए। फरशी ऊनी दरी, जो कमरे में बिछाने लायक थी, ८० खरीदी, और ४००) अपनी अंटी में लगाए। एक ताँगे पर सवार हुए, और सीधे नवाब साहब के मकान पहुँचे।

एक रोज़ शाम को—

नजमा और नई बेगम चर्क लेडी साहबा को लेकर नज़ीरा सिनेमा दिखाने पहुँचा। टिकटघर के सामने उसकी एक शख्स से मुलाकात हो गई। उसने नज़ीरा से पूछा—“यार ! ये दोनों परियाँ कौन हैं ?”

नज़ीरा ने उसे फिड़ककर जवाब दिया—“कोई हैं—तुमको क्या ?”

“अजी, ऐसी बेरुखी ? दोस्तों से भी चलने लगे, क्यों ? भूल गए मलिहाबाद की बातें ?”

नज़ीरा कुछ नरम पड़ा, और बोला—“मेरे मालिक के घर की हैं। सिनेमा दिखाने लाया हूँ।”

उस साथी ने दोनों औरतों पर नज़र डालकर कहा—“कुछ मेरा भी खयाल रखना दोस्त ! यह नहीं कि अकेले...”

बात काटकर नज़ीरा बोला—“.....खबरदार ! ऐसी बातें मत करो।”

“ऐ हे ! बड़े दूध के हो बेटा ! सारी कलई यहीं खोल दूँगा बीच बाज़ार में !”

नज़ीरा सिटपिटाकर कहने लगा—“मेरा यह मतलब नहीं, तुम्हें नाराज़ थोड़े ही करता हूँ। ज़रा मौक़े से बात किया करो।”

“तो बतलाओ, ये लोग कौन हैं ?”

नजीरा ने मुसकराते हुए कहा—“वह नीली साड़ीवाली हमारी नई सरकार साहबा हैं, और वह दूसरी धानी साड़ीवाली नवाब साहब की लड़की नजमा है। अच्छा, मैं उन्हें टिकट दे दूँ, तब तुमसे बातें करूँ।”

नजीरा टिकट लेकर दोनों को दे आया। वे दोनों सिनेमा-हॉल के अंदर चली गईं। अब नजीरा पलट आया। उस आदमी ने कहा—“यार ! अगर कुछ पर्दा न रक्खो, तो तुमसे एक बात पूछूँ।”

“नहीं, पर्दा न रक्खूँगा। पूछो, क्या पूछते हो ?”

“तुम्हारे नवाब साहब तो अघेड़ हो चुके, और यह नई सरकार साहबा अभी कमलिन नज़र आती हैं। इनसे उनसे पटती कैसे होगी ? उन्होंने कोई नया सिलसिला भी.....”

“बता दूँ ?” कहकर नजीरा मुसकराया।

“तुम्हें मेरी कसम, बता भी दो।” उसने नजीरा की गर्दन पर हाथ रखते हुए कहा—“छिपाना मत, देखो, तुम मेरे लँगोटिया यार हो।”

“हमारी सरकार साहबा को नवाब साहब की क्या ख़रूरत।” नजीरा ने आँखें नचाते हुए कहा।

“तो मालूम होता है, तुमने अपना रंग जमाया है उस्ताद !” उसने नजीरा की पीठ पर हल्का हाथ मारते हुए कहा।

“तो तुम्हारे लिये कौन-सी रोक-थाम है ?”

“मगर तुम मदद करो, तब न ?”

“अच्छा भाई नूरु ! एक बात है। कुछ खर्च कर सकते हो ? कानपुर की मिल में नौकरी करके तुमने खूब रकम में पोटी हैं।”

“हाँ, जो तुम कहो, वही खर्च करूँ। बोलो, क्या कहते हो ?”

“सिर्फ ५०।”

“मैं तैयार हूँ। कहाँ साले ५० आते हैं, कहाँ जाते हैं।”

नूरु ने तड़पकर कहा—“बोलो, कब की रही।”

“देखो, मौक़ा निकालूँगा। सब रक्खो। हाँ, यह तो कहो, कानपुर से कब आए ?”

“अभी छ महीने बाद परसों ही आया हूँ।”

“माहवार क्या पैदा करते हो ?”

“७०-७५ रुपए पड़ जाते हैं। यहाँ मा हैं, ३० उनके लिये भेज देता हूँ। मेरे लिये ४०-४५ रुपए बहुत हैं।”

“तब तो तुमने खासी रकम जमा कर ली होगी।”

“हाँ, सब थोड़े ही खर्च हो जाते हैं। मगर तुम तो यार अब खूब फ़ैशनेबिल बने रहते हो। तुम्हें क्या माहवार मिलता है ?”

“मेरी तनख़्वाह के लिये कुछ न पूछो। वही पुराना हिसाब-किताब।”

“सो कैसे ? इस वक्त भी जो कपड़े तुम पहने हो, क्या ५० की लागत से कम होंगे ?”

“इसका क्या ।” नज़ीरा ने कुछ मुसकराकर कहा—“यह तो हमारी सरकार साहब की इनायत है ।”

“अच्छा ! यह बात है ।” नूरु ने नज़ीरा का कंधा हिलाते हुए कहा—“क्या तुमने खुद कपड़ों के लिये कहा था ?”

“नहीं यार ! मैं क्यों कहता । उन्होंने खुद कहा, नज़ीरा ! तुम्हारे कपड़े बहुत गंदे रहते हैं, साफ़ पहना करो । मैंने जवाब दिया कि मेरे पास और हैं ही नहीं । तब उन्होंने खुद ही ये कपड़े बनवा दिए ।”

“नवाब साहब ने तो कुछ नहीं कहा फिर ?”

“वह बेचारे क्या कहते । उनको कुछ चलती भी है सरकार के सामने ।”

“तब तो तुम्हारे पो-चारे हैं यार ! बड़िया हाथ मारा है ।” ये लोग यों ही बातें कर रहे थे, तब तक और दो-चार आदमी वहाँ आ गए । तब ये दोनों चाय के होटल में जा बैठे । यों ही समय व्यतीत हो गया, और सिनेमा खत्म हो जाने पर वे दोनों मा-बेटी भी बाहर आ गईं, और नज़ीरा को साथ लेकर, फ़िटन पर बैठ घर की ओर चल-दीं ।

“लाट साहब की दावत हो गई, मगर २००० रुपयों में बत्ती लग गई, इसकी क्या फिक्र ? साहब खुश तो रहे । यों तो वैसे भी हजारों रुपए बर्बाद ही होते रहते हैं । हाँ, मुझे चम्पीद तो हुई कि अब जल्द-से-जल्द मैं खानबहादुर हो जाऊँगा ।” नवाब साहब यों ही सोच-विचार में मग्न थे कि सामने मुंशी नासिरअली ने आकर, आदाब बजाकर अर्ज किया—“हुजूर ! अब क्या हुक्म है ?”

“सुनिए मुंशीजी ! आप चूँकि हमारे अब्बाजान के सामने के पुराने मुलाजिम हैं । बुढ़े हो चुके हैं । मैंने सोचा था, अब आपको कारेखास में रखकर आपकी परवरिश करूँ, मगर नहीं, आप यहाँ का काम नहीं कर सकेंगे, इसलिये आप इलाके पर ही वापस जायँ, और वहीं काम करें ।”

‘जैसी हुजूर की मरजी ।’ मुंशी नासिरअली ने कहा—“मैं तो हर तरह आपकी खिदमत करने को तैयार हूँ ।”

‘तो बस खैर, आप इलाके जायँ । ज्यादा बातों से कोई गरज नहीं ।’ यह सुनकर मुंशीजी चलते पाँव फिरे, और इलाके जाने की तैयारी करने लगे ।

कुछ दिनों बाद—

पीर मुर्शिदों और पैगंबरों की लाखों मिन्नतें मानने और

दरगाहों पर रेवड़ियाँ और चादरें चढ़ाने के बदले आखिर-कार नवाब लटकन को खानबहादुर का खिताब मिल ही गया। अब वह खानबहादुर नवाब अब्दुलक़दीर साहब बन गए।

यार-दोस्तों ने इकट्ठे होकर पचासों तरह से मुबारकबादी दी—क़सीदे पढ़े गए, मोटिंग हुई, और दावत देने की तज-बीज पेश हुई, मगर उसी रोज़ एक खास जलसा होनेवाला था। मुस्लिम-कलचर-लीग का सालाना जलसा ख़त्म हो जाने के बाद मित्र-मंडली को दावत दी जाय, यही फ़ैसला ठीक रहा।

‘मुस्लिम - कलचर-लीग’ का जलसा सफल करने के खयाल से उसके संचालकों ने एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया था। बाहर से भी अच्छे-अच्छे महानुभाव बुलवाए गए थे। उनमें से कुछ मशायि आ भी चुके थे। कुछ के आ जाने का अभी इंतज़ार था। हमारे खानबहादुर साहब भी बड़ी सरगरमी से लोग के जलसे को सफल बनाने में भाग ले रहे थे।

जलसे की कार्यवाही शुरू हो गई। विद्वानों ने अनेक विषयों पर अपने-अपने व्याख्यान दिए। उपस्थित जन-समूह में खूब तालियाँ पीटी गई, और पहले दिन की कार्यवाही समाप्त हुई।

दूसरे दिन अगले साल के अधिकारियों का चुनाव था। बहुमत से खानबहादुर नवाब अब्दुलक़दीर साहब प्रेसिडेंट

चुन लिए गए। इसी प्रकार अन्य अधिकारियों का भी चुनाव हुआ, और सबके बाद व्याख्यान की बारी आई।

भद्र पुरुषों ने 'ओरों के हक में हमारा फर्ज', 'नेक-नीयती और खुदातर्सी', 'हमारे आमाल', 'इनकसारी और दरियादिली', 'आज्जाब और सबाब' वगैरा-वगैरा विषयों पर खूब जी खोलकर रोशनी डाली। उपस्थित मंडली में क्रदम-क्रदम पर 'आफरी' की सड़ाई बुलंद हो रही थी।

सबसे आखिर में खानबहादुर साहब सदर ने खड़े होकर लोगों को मुखातिब करते हुए कहा—“दोस्तो! आपने हमारे बाहर से आए हुए नीज शहर के चंद असहाब की ख़्वाब से निकले हुए अल्फ़ाज़, जो मारिंद कीमती गौहर के हैं, सुने, और उनसे खासा लुत्त उठाने के साथ-साथ उन पर कारबंद होने का भी तहैया किया। मुझे ऐसा महसूस होते हुए बड़ी खुशी पैदा हो रही है। मैं भी यही मशविरा दूँगा कि आप लोग आपसी बुराई और कीना को दिल से निकालकर भाईचारे का वास्ता या रिश्ता कायम करें। नफ़सपरास्ती बिलकुल ही छोड़ दें। हम मानते हैं, इस रास्ते पर चलने-वाला शख्स खुद को उस वक़्त पर जन्नत में बैठा हुआ महसूस करता है, मगर कितनी देर? वही चंद मिनट। नतीजा क्या निकलता है कि असली जन्नत का दरवाज़ा उसके लिये बिलकुल बंद हो जाता है। लिहाज़ा हमारा पहला फ़र्ज है कि हम दूसरी औरत, लड़की या बहू को

अपनी मा और बहन की तरह ही देखें। तुम दूसरों की इज्जत रक्खोगे, खुदा तुम्हारी इज्जत रक्खेगा। अलावा इसके यह भी देखने में आया है कि हमारे भाई जो मालदार हैं, वे अपनी दौलत के ग़रूर में अपने दुश्मनों की जान तक लेने में आना-कानी नहीं करते। दोस्तो! यह बात बहुत बुरी है। खुदा हमारी इन हरकतों से कभी खुश न होगा। हमें चाहिए, हम दुश्मन के साथ भी वह तौर-तरीका बर्ते, जिससे वह हमसे दुश्मनी ख़त्म कर हमारा दोस्त बन जाय। तभी नाम है, तभी इज्जत है। तभी हम भी खुश होंगे, और हमारा खुदा भी। इन सारी बातों पर अमलपैरा होने के लिये एक बात की खास ज़रूरत है कि हम सच्चाई और रास्ती को कभी हाथ से न छोड़ें। हमेशा उसे गले लगाए रहें। कहा भी है—

‘रास्ती इक़ बेशक़ीमत चीज़ है, क्योंकि बैतुल्लाह की दहबीज़ है।’

“इसलिये रास्ती को अपनाइए। इसके होते हुए कोई भी बुरा काम आपसे न होगा। बोलिए, आप लोग क्या कहते हैं?”

चारों ओर से आवाज़ें उठने लगीं—“आपने ठीक फ़रमाया।” “हम रास्ती को ज़रूर अपनाएँगे।” “अज़ाब का कोई भी काम हरगिज़-हरगिज़ न करेंगे।” वगैरा-वगैरा। जलसा समाप्त हुआ, और पब्लिक में काफ़ी जोश रहा।

खानबहादुर साहब भी जलसा बरखास्त होने पर अपने घर आए। क्या देखते हैं कि दरवाजे पर कुछ फक्कीर दुआएँ दे रहे हैं, और कड़ रहे हैं—“अल्ताह भला करे, खानबहादुरी के ही सड़के में रोटी मिल जाय।” “लीग को ‘सदरी’ मुबारक हो !” यों ही दुआओं की बौछार हो रही थी। इन्हीं लोगों में एक गरीब लड़की, नहीं-नहीं, युवती भी हाथ पसारे खड़ी थी। उसमें रूप था, सौंदर्य था, लावण्य था, मनोमोहकता थी, मगर सब दरिद्रता तथा जीर्ण-शीर्ण कपड़ों के पर्दे में छिपी थी। उन गुणों को यदि कोई देख सकता था, तो केवल भावुक, रसिक। दूसरों में देखने की क्षमता न थी।

खानबहादुर साहब ऐसे गुण-रत्नों के खासे जौहरो थे। उनकी एक निगाह ने ही सभी गुणों की परख कर ली। नौकरों से बोले—“घर से रोटी लाकर इन भिखमंगों को दे दो।” और साथ ही उस युवती कन्या को संबोधित करते हुए बोले—“क्या तुम यहीं रहती हो ?”

“नहीं मालिक ! मैं बाहर देहात की रहनेवाली हूँ।”

“क्या तुम्हारे मा-बाप नहीं हैं ?”

“दोनों को हैजा हो गया, और मर गए।”

“कोई भाई-बहन भी नहीं है क्या ?”

“नहीं मालिक ! मैं अकेली ही हूँ ।”

“तुम्हारा नाम क्या है ?”

“वहीदन ।”

“अच्छा वहीदन, तुम बाहर बाजार में भीख माँगती न फिरो । मुझे एक नौकरानी की जरूरत है ही, तुम मेरे पास रहो ।”

लड़की यह सुनकर खुश हो गई । उसने सोचा—चलो, अच्छा हुआ, रोटी-कपड़े का सहारा हो गया । लड़की वहीं रुक गई, और बाक़ी भिखमंगे रोटी का एक-एक टुकड़ा लेकर चलते बने ।

खानबहादुर साहब के आज्ञानुसार बाहर के ही बरामदे में वहीदन को भर पेट रोटी खिला दी गई । वह सारे दिन की भूखी थी । उसने रोटी खाकर सुख की साँस ली । रात हो चुकी थी । इधर वहीदन को सारे दिन भूखे रहने के बाद भोजन मिलने के कारण निद्रादेवी ने अपनी गोद में लेने के लिये हाथ बढ़ाए । वहीदन बैठे-बैठे ही ऊँघने लगी । खानबहादुर साहब एक ओर बैठे हुए बातें कर रहे थे । एकदम उनकी निगाह वहीदन पर पड़ी । सोचा—यह सोना चाहती है । बोले—“वहीदन ! उठो, सामनेवाले कमरे के अंदर जाकर सो रहो ।” नौकर से बोले—“करीमू ! एक कंबल लाकर वहीदन को दे दो ।”

वहीदन के तन पर कोई साबित कपड़ा न था। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था, इससे वह काँप भी रही थी। उसने कंबल पाकर खानबहादुर को लाखों दुआएँ दी, और मन में सोचने लगी—बड़े अच्छे आदमी हैं। इनके दिल में गरीबों के लिये कितना रहम है। यही सोचते-सोचते वह कमरे में गई, और कंबल ओढ़कर लेट रही।

खानबहादुर साहब भी जब खा-पीकर निवृत्त हुए, तब रात के ग्यारह बज चुके थे। नौकर-चाकर भी बावर्चीखाने में खाने-पीने में लगे हुए थे। उस समय बाहर कोई न था। नवाब साहब सीधे वहीदन के कमरे में पहुँचे। बोले—“वहीदन, क्या सो रही हो? ऐं! तुम तो ज़मीन पर ही पड़ी हो।” वहीदन जाग गई, और उठकर बैठ गई। नवाब साहब कहते गए—“मेरा खयाल था, इस कमरे में खाट पड़ी है।”

‘नहीं मालिक! यहाँ तो मैं बड़े आराम से सो रही थी।’

“नहीं-नहीं, उठो, दूसरे कमरे में चलो। वहाँ खाट पड़ी है, तुम आराम से सोओ।”

वहीदन उठकर नवाब साहब के साथ दूसरे कमरे में चली आई। मगर वह अपने जी में सोचती थी, क्या इनके घर में औरतें नहीं हैं? मुझे उनके पास ही सोने के लिये क्यों नहीं भेज दिया। जब कमरे में पहुँची, देखा, कमरा खूब सजा हुआ है। बड़ी अच्छी-अच्छी तस्वीरें शीशे में जड़ी

हुई दीवारों पर लटक रही हैं। एक ओर बहुत बड़ा आईना लगा हुआ है। बीच में लटका हुआ भाड़ रोशनी दे रहा है। एक ओर मेज-कुरसी लगी हुई है। यह सब देखकर वहीदन काँप गई। वह सोचने लगी—क्या मुझ-सी गरीब भिखारिन के सोने के लिये यह कमरा !

नवाब साहब ने खूँटी पर से एक ऊनी क्रमोज, एक बास्कट और एक फ़ैसी किनारे की धोती देकर कहा—
“वहीदन ! अपने फटे-पुराने और गंदे कपड़ों को उतार डालो, और इन्हें पहन लो। मैं अपने नौकर-चाकरों को गंदा रखना पसंद नहीं करता।”

वहीदन ने झिझकते हुए उन कपड़ों को ले तो लिया, मगर उसका दिल बाँसों उछलने लगा। वह सोचने लगी—कुछ दाल में काला जरूर है। आज हो बिना किसी खिदमत के बदले मेरी यह इज्जत ! वह कपड़े पहनती जाती थी, और सोचती जाती थी। हो-न-हो, यह सारी इज्जत सिर्फ मेरी गरीबी की नहीं, मेरी जवानी की है। मेरी जवानी ने ही इन्हें मतवाला बना दिया है। खैर, देखा जायगा। मैं भी किसी छिछोरे मा-बाप की औलाद नहीं हूँ। अगर मैं अपनी जवानी ही बेचती, तो इस उम्र में क्यों दर-दर मारी-मारी फिरती। मेरे कसबे में ही पचासों मेरे चाहनेवाले थे। मुझे उन्होंने लाखों सब्ज बारा दिखाए। सैकड़ों चालें मुझसे चलीं, मगर मैं असमत बेचने पर राजी न हुई। मुझे अपनी असमत

जान से भी ज्यादा प्यारी है। मर जाऊँगी, मगर मा-बाप के नाम पर कालिख न लगने दूँगी। आज मेरी बदकिस्मती ने मा-बाप का साया मेरे सर से छीन लिया। मुहताज बनाकर एक-एक दाने के लिये भिखारी बना दिया, तो क्या उसने मेरी इज्जत भी छीन ली? नहीं, मेरी-इज्जत मेरे पास है, और हमेशा मेरे पास रहेगी। वह यों ही सोचती हुई कपड़े पहनकर बैठ रही।

नवाब साहब वहीदन को कपड़े देकर कमरे से बाहर चले गए थे। वहीदन कमरे में अभी अकेली ही बैठी थी कि नवाब साहब आ गए। मुसकराते हुए बोले—“हाँ, वहीदन! अब ठीक हो तुम।” यह कहकर उन्होंने अल्मारी खोलकर इत्र की एक शीशी निकाली, और अपनी उँगलियों पर इत्र लेकर वहीदन की नाक, गाल और सारे बदन पर लगा दिया। वहीदन का शरीर थर्रा गया, और साथ ही लज्जा ने भी आ घेरा। मगर खामोश होकर रह गई।

“अब खड़ी क्यों हो वहीदन!” नवाब साहब ने मुसकराकर कहा—“यह पलंग तुम्हारे वास्ते ही बिछा पड़ा है।”

“नहीं मालिक! मैं इस पर सोने लायक नहीं हूँ।”

“सो क्यों? तुम्हें क्या एतराज है? वहीदन!”

“नहीं सरकार! यह आप लोगों के ही योग्य है। मैं तो यतीम, गरीब, भिखारिन ठहरी। मैं अपने उसी कमरे में जाती हूँ।” यह कहकर वहीदन बाहर चल दी। नवाब

साहब ने बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया, और फिर अंदर खींचकर खुद पलंग पर बैठते हुए बोले—“घबराओ नहीं, मैं भी यहीं रहूंगा। तुम्हें किसी तरह की तकलीफ नहीं होगी।”

वहीदन झुंझलाकर चीख पड़ी—“यह आप क्या कर रहे हैं?”

नवाब लटकन ने कमरे के किवाड़ बंद करते हुए जवाब दिया—“कुछ नहीं, कुछ नहीं, तुम डरो मत!”

“नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। हरगिज नहीं हो सकता।”

“क्यों?” नवाब साहब गर्म पड़े।

“किवाड़ खोल दीजिए, वरना अच्छा न होगा।”

वहीदन ने लपककर दरवाजे की कुंडी खोल दी। वह बाहर निकलना ही चाहती थी कि नवाब लटकन ने उसे हाथ पकड़कर पीछे खींच लिया, और किवाड़ भेड़ दिए।

दोनों में खींच-तान चल रही थी कि अचानक बरामदे में जूतों की आवाज सुनाई पड़ी, और कमरे का दरवाजा खोलकर शहर-कोतवाल, दो सिपाही और एक बुजुर्ग आदमी भीतर दाखिल हुए।

नवाब साहब ने वहीदन का हाथ छोड़ दिया। उनके चेहरे पर हवाईयाँ उड़ने लगीं। सिर नीचा करके पलंग पर बैठ गए।

“खानबहादुर साहब! आप आज अगवा करने के जुर्म

में गिरफ्तार हुए।” कोतवाल साहब ने हाकिमाना ढंग से कहा।

‘ऐसा क्यों साहब ?’

“अब भी आप पूछते हैं, ऐसा क्यों ? सरीहन में आँखों के सामने आपके कब्जे में एक गौर लड़की को देख रहा हूँ, उस पर भी क्यों का सवाल ?”

“ऐसा नहीं है, जैसा आप खयाल करते हैं।” खानबहादुर साहब ने खुशामदाना लहजे में कहा—“यह लड़की खुद मेरे यहाँ आ गई।”

कोतवाल साहब ने वहीदन की तरफ मुखातिब होते हुए कहा—“कहो, क्या बात है ? तुम इनके यहाँ खुर आई थीं ?”

वहीदन ने आगाज से अंजाम तक सारी बातें कह सुनाई। तब कोतवाल ने नवाब साहब से पूछा—“कहिए, अब भी आपको कुछ कहना है ? जब आपने इसे नौकरानी की सूरत में रक्खा, तब इसे अब तक जानानखाने में न भेजकर अपने आरामगाह में क्यों कैद किया आपने ?”

“यह सरासर भूठ कहती है।” नवाब साहब गिड़-गिड़ाकर बोले—“आप यत्नीन मानिए, यह मेरे कमरे में खुद ही चली आई।”

“आप जुर्म से इनकार करके क़ानून के शिकंजे से बच नहीं सकते खानबहादुर साहब !” कोतवाल साहब ने बेरुखाई से कहा—“मैंने आपको गिरफ्तार किया।”

खानबहादुर साहब ने देखा, मैं अब बच नहीं सकता। मेरी इज्जत पर आ बनी है। तब अपनी जगह से उठे, और कोतवाल साहब का हाथ पकड़कर कमरे से बाहर ले आए, और बोले—“जुर्म वाकई हो गया है मुझसे। अब आप मुझे माफ़ करें, और मेरे लायक जो खिदमत हों, उससे आगाह करें। यह बात आप अच्छी तरह जानते हैं कि अगर मैं गिरफ़्तार किया गया, तो मेरी बड़ी बदनामी होगी।”

“बात ठीक कहते हैं आप। मगर आप जानते हैं, अगवा करने का जुर्म बड़ा संगीन है।”

“मैं मानता हूँ, मगर मेरी खिदमत की कोई भी कीमत नहीं है क्या? मैं आपको अभी ५०० देता हूँ।”

“नहीं, ५०० में तो काम न चलेगा। आपको कम-से-कम १००० खर्च करना चाहिए।”

“यह तो साहब बहुत है।” नवाब साहब ने गिड़गिड़ाकर कहा।

“जुर्म कौन-सा थोड़ा है।”

“बरादे करम कुछ तो कमी कर लीजिए।”

“अगर यही मरजी है आपकी, तो कम-से-कम ६५० दे दीजिए, इससे ज्यादा कमी नहीं हो सकती।”

नवाब साहब ने सोचा—आवरू पर पानी पड़ रहा है, जुर्म मुझ पर लागू है ही। कोतवाल साहब कुछ ज्यादा बर्ग पड़ते नहीं, चलो होगा, देखा जायगा। मैं जी में समझ लूँगा

कि लाट साहब की दावत में बजाय २००० के ३००० खर्च किए। वह फट बोल उठे—“अच्छा साहब, मुझे मंजूर है।”

दोनों उठकर बाहर आए। कोतवाल साहब बोले—“इफ्तखारहुसैन ! लड़की को लें जाओ।”

वह बुजुर्ग, जिनका नाम इफ्तखारहुसैन था, वहीदन को लेकर, कमरे से बाहर निकलकर फाटक से होते हुए सड़क पर पहुँचे और चलते-चलते एक सराय में दाखिल हुए, तब वहीदन बोली—“मामू ! तुम कब आए ? घर पर तो थे नहीं।”

“मैं अभी परसों घर पहुँचा। तुम जानती हो बेटी ! कि फौजी नौकरी में छुट्टी जल्दी मिलती नहीं। छ महीने बाद आया हूँ। फिर, घर पर कोई और है नहीं, जिसकी वजह से मुझे घर आने की जल्दी हो। हाँ तो, जब घर आया, तो तुम्हारे मा-बाप के मरने की खबर मिली। मैं फौरन तुम्हारे मकान को चल पड़ा। जब कल वहाँ पहुँचा, तब मुझे पता लगा कि तुम खाने-पीने की तकलीफों से परेशान होकर लखनऊ की तरफ आई हो। बस, मैं यहाँ आया, और तुम्हें ढूँढने लगा। अभी शाम के वक़्त कुछ भिखमगे इधर से ही जा रहे थे, और आपस में बातें कर रहे थे कि ‘वहीदन की तो खुदा ने सुन ली कि वह नौकर हो गई।’ दूसरा बोला—‘अजी, तुम क्या जानो, वह नौकर नहीं हुई, उसकी जवानी नौकर हुई है।’ मैंने उन लोगों से तुम्हारा पता पूछा। फिर

कोतवाली पहुँचा, तब उस नालायक नवाब के पंजे से तुम्हें छुड़ाकर ला सका हूँ। मगर बड़ा तअज्जुब है कि बस्ती में तुम्हारी परवा किसी ने भी न की !”

“अरे मामूँ, कौन किसकी परवा करता है। मैं इन १५ दिनों में ही दुनिया को खूब देख चुकी हूँ कि बस मतलब की है। पास-पड़ोसियों पर मेरे मा-बाप के कौन-से एहसान नहीं थे, मगर किसी ने बात तक न पूछी। आखिर क्या करती, घर से निकल पड़ी।”

“खैर, होगा, जाने दो। तुमने कुछ खाया भी है या नहीं ?”

“हाँ, मैं खा चुकी हूँ।”

“अच्छी बात है। खैर, तुम अब आराम से लेट रहो। मैंने अभी कुछ नहीं खाया है। मैं बाहर जाकर कुछ खा आऊँ।”

“जाइए, और खाकर जल्द आइएगा। मुझे अकेले डर लगेगा।”

इफ्तखारहुसैन कोठरी से बाहर चले गए, और बाजार में जाकर खाना खाने लगे। जब खाकर वापस आए, तब तक वहीदन जागती रही। अब दोनों आराम से खाटें बिछाकर लेट रहे, और सबेरा होने पर रेल पर सवार होकर अपने गाँव चले गए।

उधर खानबहादुर साहब ने कोतवाल साहब को खासी

रक्कम देकर बिदा किया, और सुख की साँस ली। घर के नौकर-चाकरोँ को यह सब किससा कुछ भी मालूम न हुआ, क्योंकि वे सब तब तक खाना खाकर सो गए थे।

फिदाहुसैन जिलेदार, जो नवाब लटकन के इलाक़े में काम कर रहे थे, स्वभाव से ही कठोर थे। इधर नवाब साहब के आदेशानुसार उन्हें और भी कठोर बन जाना पड़ा। किसानों से लगान के अलावा वे सारी रकमें भी जिलेदार को वसूल करना पड़ती थीं, जो साहब लोगों की दावतों और उनके चंदे में खर्च होती थीं। यही कारण था कि जिलेदार साहब अपने असामियों से बहुत ही सख्त बर्ताव किया करते थे।

इस साल किसानों की दोनो फसलें खराब हो जाने से लगान ही का वसूल होना कठिन हो गया था। फिदाहुसैन ने काफ़ी सख्ती भी की, परंतु फल कुछ न निकला। अतः वह इलाक़े की रिपोर्ट देने के लिये नवाब साहब के पास ख़ुद आए।

नवाब साहब ने पूछा—“कहिए मुंशीजी ! इलाक़े का क्या हाल है ?”

“हूज़ूर, इस साल लगान नहीं चलता !”

“क्यों ?”

“बात यह है हुज़ूर कि आपक गाँव बहुत बिगाड़ रहा है। साला सफ़दुआ चमार बहुत ही बदमाश हो गया है। उसी ने सारे गाँव को बिगाड़ रक्खा है।”

“आखिर क्यों ?”

“खुदा जाने क्यों ।”

“फिर तुमने उसका कुछ इलाज नहीं किया ? लगान तो अलग रहा, चंदे का भी हिसाब अभी पड़ा हुआ है, वह भी अब बजाय २००० के ३००० पर पहुँच गया है। काम कैसे चलेगा ?”

“हुजूर, मैंने कोशिश तो भरपूर की, मगर—”

“क्या ?”

“सकटुआ को पूरे ६ घंटे के लिये मुर्गा बना दिया। पीटा भी। लालजी पासी तो बहुत ही अकड़ रहा था, उसे खूब ही धुनका। साला गाँव छोड़कर भी भाग गया, लेकिन लगान नहीं चला ।”

“तो इसके मानी यह हैं कि गाँव बहुत ही बिगड़ रहा है ।”

“हाँ हुजूर, बात तो यही है ।”

“खैर, कोई हर्ज नहीं। हम इसका मुनासिब इंतजाम करेंगे। तुम एक काम करो कि बक्राया लगान की नालिशें दायर कर दो ।”

“हाँ, आपने सही फरमाया, मगर नालिशें अगर १०-५ हों, तो कर भी दी जायँ, पूरा गाँव-का-गाँव पड़ा हुआ है ।”

“बक्रायावाली कुल कितनी असामियाँ होंगी ?”

“कम से-कम १५० तो होंगी ही, सिर्फ १०-२० ने ही लगान दिया है ।”

“कोई हर्ज नहीं, सब सालों पर दायर कर दो।”

“जैसा हुक्म हुजूर का, मैं कल से ही इसकी तैयारी करूँगा।”

“अच्छा, जाओ। आज मेरे कुछ दोस्तों की दावत है, जाकर इतिजाम में मदद दो।”

मुंशी फिदाहुसैन चले गए।

नवाब साहब सोचने लगे—गाँव से पैसा न मिला, तो खर्च कैसे चलेगा ?

[८]

नवाब साहब के लड़के को, जो अब १६ साल का हो चुका था, ओर अँगरेजों की एफ्० ए० फर्स्ट इयर क्लास की शिक्षा प्राप्त कर रहा था, साँप पकड़ने का काकी अभ्यास था। वह यों ही चतते-फिरने साँप को कभी पूँछ पकड़कर लटका लेता, कभी उसके फर पर इस चाताकी और सकाई से पंजा मारता कि साँप बिलकुल बेकाबू हो जाता। उसने बहुतेरे साँप पकड़कर क़ेद कर रखे थे।

नवाब साहब को अपने लड़के अब्दुलक़दीम का यह शौक बहुत खलता था, इसलिये वह उसे कई बार डाँट-फटकार बना चुके थे, मगर उसका बतोजा कुछ भी न हुआ। लड़के ने अपना स्वभाव न छोड़ा। वह जब मौक़ा पाता, अपने पकड़े हुए साँपों के ज़हरीले दाँत भी तोड़ डालता। दोस्तों से वाहवाही लूटने के लिये भी वह साँपों से खेला करता था।

आज नवाब साहब के यहाँ मित्र-मंडली की दावत ख़िताब पाने की ख़ुशी में नियत की गई थी। दोस्त-अहबाब आ-आकर जमा हो रहे थे। बड़ी चहल-पहल थी। बच्चे इधर-से-उधर कूदते फिर रहे थे। कोई गा रहा था, कोई बजा रहा था। जो समझदार थे, वे दो-दो, चार-चार की

टोलियों, में जहाँ-तहाँ बैठे हुए बातें कर रहे थे। कुछ लड़के अब्दुलफहीम के भी क्लासफेलो थे। उनमें से कुछ अलग बैठे हुए गप-शप कर रहे थे। इसी समय अब्दुलफहीम भी पहुँच गया। साहब-सलामत होने के बाद कुदूस बोला—“यार ! आज तो बड़ा अच्छा मौक़ा है, सब दोस्त जमा हैं, अपने नए साँप दिखाओ। हम लोग भी देखें, कैसे हैं।”

“हाँ, यह तुमने भाई, खूब याद दिलाई।” फहीम ने तड़पकर कहा—“मैंने आज ही एक बड़ा ज़हरीला साँप पकड़ा है, और वह बिलकुल सफ़ेद है।”

“तो भाई, उसे ज़रूर दिखाओ।” कुदूस ने फहीम का हाथ पकड़कर कहा—“हमने आज तक सफ़ेद साँप नहीं देखा !”

फहीम साँप लाने चला गया, और कई पिटारे उठा लाया। लोगों ने जो उसे पिटारे लाते देखा, तो बोले—“फहीम ! यह क्या करते हो, रात का वक़्त और यह साँपों का खेल !”

“अरे, रहने भी दो यार ! यही शगल सही। दाँत तो उनके तोड़ ही दिए होंगे।” दूसरे आदमी ने धीरे से कहा।

फहीम एक-एक पिटारा खोलकर अपनी मित्र-मंडली को साँप दिखाने लगा। और लोग भी उठकर उसके करीब आ गए, और साँपों का मुलाहिज़ा करने लगे। कुदूस बोला—“फहीम ! तुमने इन सबके ज़हरीले दाँत तो तोड़ ही दिए होंगे ?”

“हाँ, कुछ के तोड़ दिए हैं, कुछ के तोड़ने बाक़ी हैं।”

“अच्छा, तो वह साँप दिखाओ, जिसके दाँत अभी तोड़े न गए हों।”

“नहीं, नहीं। ऐसा न करना। ख़तरेवाला काम बुरा है।” एक आदमी ने कहा।

दूसरा बोला—“इसमें ख़तरा किस बात का? यह तो रोज़ ही दाँत तोड़ते होंगे।”

“ठोक है, मगर यह भी तो सोचो, अगर कहीं हाथ से छूट गया, तब?” पहले आदमी ने कहा।

“खिलाड़ी के हाथ से कहीं ऐसा हो सकता है?” दूसरे ने जवाब दिया।

इसी वक्त फ़रीम ने बड़ी सफ़ेद साँप, जो आज ही पकड़ा गया था, और जिसके दाँत अभी तोड़े न गए थे, फन पकड़कर पिटारे के अंदर से उठा लिया। साँप सारा-का-सारा फ़रीम के बाजू पर लिपट गया, और मारे गुस्से के फुरुक़ारने लगा। फ़रीम बड़ी मजबूती से साँप का फन पकड़े हुए था। उसने फन को और जोर से दबाकर उसका मुँह फैला दिया। साँप अपनी जीभ लपलपाने लगा। इधर तो फ़रीम अपने दोस्तों को साँप के अड़ीले दाँत दिखा रहा था, और उधर साँप अपनी पूरी ताक़त से फ़रीम का बाजू जकड़ रहा था। फ़रीम के बाजू में काक़ी जकड़न होने की वजह से खून का बहाव रुकने लगा। उसे बाजू में कुछ-कुछ दर्द का एहसास

हुआ। इस दर्द के होते ही उसका हाथ कुछ ढीला पड़ा। सॉप ने फ़ौरन् जोर करके अपना जहरीला दाँत उसके अँगूठे में मार दिया। अँगूठे से ज़ारा-सा खून निकल आया। लोगों ने जो खून निकलते देखा, तो बोले—“यह क्या ? दाँत लग गया क्या ?”

दूसरा बोला—“मालूम तो ऐसा ही होता है।”

तीसरा बोला—“फ़हीम ! इसके ज़हर को दबा, जो तुम्हें मालूम हो, जल्द करो।”

इतनी देर में ज़हर ने अपना काफी असर जमा लिया, और फ़हीम का हाथ ढाला पड़ते ही सॉप लूट गया। वह लड़ाता हुआ एक ओर चल दिया। इधर फ़हीम को थकन महसूस हुई, तो वह वहीं फ़र्श पर ही लेट गया। अब क्या था, चारों ओर दौड़-धूप होने लगी। नवाब साहब, जो दावत का सामान इकट्ठा करने में लगे हुए थे, दौड़ते हुए आए, फ़हीम की हालत देखकर उनके पैरों-तले की ज़मीन निकल गई, और चीखकर बोले—“यह क्या हो गया ?”

एक आदमी दौड़ता हुआ डॉक्टर साहब के पास गया। डॉक्टर साहब फ़ौरन् आए। उन्होंने आते ही शिगाफ़ दिया, मगर फ़हीम की हालत गिरती ही गई। अब तो लोगों को फ़हीम की तरफ़ से ना उम्मेदी-सी होने लगी। नवाब साहब अपना माथा पकड़कर वहीं ज़मीन पर बैठ गए। बोले—“हाय ! किए-धरे कुछ न हुआ !”

इतने में जिलेदार मुंशी फ़िदाहुसैन भी आ गए। वह बोले—“भवानीपुर का सकटे चमार इस काम में होशियार है। अगर हुक्म हो, तो उसे बुला लाऊँ सरकार !”

“जब इतने बड़े डॉक्टर कुछ न कर सके, तो सकदुआ बेचारा क्या कर लेगा ?” एक आदमी ने कहा।

“नहीं, यह न कहो भाई साहब ! मैंने खुद देखा है कि जिन लोगों की नब्बें तक ज़हर की बदौलत छूट गई थीं, उन लोगों को भी उसने ज़िंदा कर दिया।” फ़िदाहुसैन ने ज़ोर-दार लहजे में कहा।

“तो फिर यही करो। इन बहसों से क्या फ़ायदा ?” नवाब साहब ने दर्द-भरे स्वर में कहा—“कार पर चले जाओ।”

मगर वह मुफ़्तसे नाराज़ है, शायद न आए।” फ़िदाहुसैन ने कहा—“अगर आप मुन्तासिब.....”

नवाब साहब ने बात काटकर कहा—“मैं नहीं जाता सुसरे के पास, मुफ़्तसे ही कौन-सा खुश होगा वह।”

नहीं, नहीं। अगर ऐसी ही बात है कि वह इस फ़न में होशियार है, तो आपको जाना चाहिए। आपका असामी है। आपका लिहाज़ उसे करना ही पड़ेगा।” एक आदमी ने कहा।

“तो क्या वह खुदा है ?” नवाब साहब ने रोते हुए कहा—“जो होना था, हो गया !”

“यह बात नहीं, नवाब साहब ! मैंने सुना है, साँप के ज़हर में आदमी की नब्बें छूट जाती हैं, जिस्म ठंडा पड़ जाता है, चेहरे पर बिलकुल मुर्दनी छा जाती है, मगर इंसान मरता नहीं । मरता है, तो पूरे ४८ घंटे बाद ।” उस आदमी ने जवाब दिया ।

और लोगों ने भी इस ख़याल की तारीफ़ की ।

एक तो लड़के का मोह, दूसरे, लोगों के कहने-सुनने से नवाब साहब खुद भवानीपुर जाने को तैयार हो गए। ड्राइवर ने कार की टंकी में पेट्रोल डानकर स्टार्ट किया। नवाब साहब बैठ गए, और कार भवानीपुर की ओर चल दी।

रात का समय था। नौ बज चुके थे। जाड़े की ऋतु थी। ठंडी हवा भी तेजी से चल रही थी, और कार भी हवा से बातें करती हुई उड़ी जा रही थी। नवाब साहब हालाँकि इस सरदी से परेशान थे, मगर लड़के की वजह से दिल कड़ा करके चले जा रहे थे। फासला चूँकि १५ मील का ही था, अतः वह २० मिनट में ही भवानीपुर पहुँच गए।

कार कुठार में आकर रुकी। सिपाही खाना खाकर आराम कर रहे थे। कार पर नवाब साहब को आया हुआ देखकर, हड़बड़ाकर उठे। नवाब साहब से ऐसे समय कष्ट उठाने का कारण पूछने पर सिपाहियों को मालूम हुआ कि लड़के को साँप ने काट लिया है, और सक्टे चमार की जरूरत है।

एक सिपाही भागता हुआ चमार के घर पहुँचा। नवाब साहब का सारा हाल उससे कहा। वह बोला—“मैं नहीं आता ऐसी रात में। मेरी क्या गरज पड़ी है, जाड़े में जाऊँ, मरूँ।”

“अरे भाई ! ऐसा न कहो । अपने मालिक हैं । मुस्लीबत सब पर आती है, फिर आदमी ही आदमी के काम आता है ।”

“मुझे वह दिन अभी याद है, जब मुझे मुर्गा बनाया था उनके ज़िलेदार ने । मेरे पैरों में अब तक टीस होती रहती है । तब नहीं सोचा था कि कभी काम पड़ेगा सकदुआ से भी ।”

“तुम यही तो नहीं जानते हो भाई सकटे ! अगर आज तुम्हारे हाथों उनके लड़के की जान बच गई, तो मालामाल हो जाओगे ।”

“अरे क्यों बहकते हो ? कौन मालामाल करेगा ? उनके दिल में दया नाम को नहीं । बस, दिखावा-ही-दिखावा है भाई ! मुझे बड़ी सरदी लग रही है । अब तुम जाओ । मैं भी जाकर लेटूँगा ।”

“यह भी याद रखो कि वह अपने इलाक़ेदार हैं । उन्हीं की रियायत में रहना-बसना है, हमें और तुम्हें ।”

“मुझे इसका डर नहीं । मैं तो अब दो-चार दिन में ही यहाँ से दूसरे गाँव में जाकर बसना चाहता हूँ । लालजी चला गया, उसी का किसी ने क्या बिगाड़ लिया ?”

सकटे यह कहकर उठा, और अपने मकान के अंदर चला गया । सिपाही लाचार होकर कुठार आया, और नवाब साहब से सारा माजरा कह सुनाया । नवाब साहब सुनकर पहले तो बहुत गर्म हुए और बोले—“सकदुआ साले की यह जुर्रत !” मगर फ़ौरन् यह भी ध्यान में आया कि मेरे गर्म

होने से काम न बनेगा। अगर यह चला गया तो शायद लड़का फिर जिंदा हो जाय, हमलिये बोले—“नमीर ! चलो, मैं खुद चलता हूँ।”

नवाब साहब नसीर सिपाही के साथ सकटे के घर पहुँचे। नसीर ने आवाज दी—“सकटे ! ज़रा बाहर आना। नवाब साहब खुद आए हैं।”

सकटे मकान से बाहर आया। सलाम किया, और बोला—“सरकार ! मेरे पैर अब तक सूजे हैं। उनमें बड़ी टीस होती रहती है। बुखार भी आ जाता है। इससे मैं न जा सकूँगा।”

“देखो सकटे ! मैं समझता हूँ, तुम पर मेरे ज़िलेदार ने ज़ुल्म किया, मगर उसे भूल जाओ, और मुझे माफ़ कर दो ! चलो, कार खड़ी है। पैदल चलना न पड़ेगा।”

सकटे ने सोचा, अब क्या करूँ। नवाब साहब अपनी ख़ता भी मान गए, माफ़ी भी चाहते हैं, तो अब इनकार करना ठीक नहीं। बोला—“अच्छा, नहीं मानते हो सरकार ! तो चलूँगा।”

यह कहकर सकटे अंदर गया कुरता पहनकर, एक दोहर ओढ़कर बाहर आया, और नवाब साहब के साथ चल दिया। रास्ते में बातों के मिलसिले में उसे मालूम हुआ कि लड़के को सफ़ेद साँप ने काटा है, तो बोला—“सरकार ! अब मेरे जाने से काम न बनेगा।”

“क्यों, क्या बात हुई ?”

“मैं सफेद साँप का जहर नहीं उतार सकता। मैंने यह किरिया नहीं सीखी है। हाँ, लालजी इस काम में उस्ताद है। उसी ने मुझे भी सिखाया है। वह सफेद साँप का जहर भी उतार देगा।”

“नसीर ! लालजी को बुलाओ।”

“हुजूर ! वह तो उसी दिन गाँव छोड़कर भाग गया था, जिस दिन पिटा था। उसे यहाँ से गए हुए आज बारहवाँ दिन है। अब वह मोहनपुर में रहता है।”

नवाब साहब माथा पकड़कर बैठ गए। सोचने लगे—जब वह हमारे गाँव से भाग गया, तो उस पर अपना ख़ोर ही क्या रहा। और, अगर वह मुझसे जी-जान से नाराज़ न हो गया होता, तो दूसरे गाँव में भागकर जाता ही क्यों ? हमारा मोहनपुर जाना अब बेकार है। फ़हीम की इतनी ही ज़िदगो थी। ख़त्म हो गई। जो होना था, हो गया। मगर लड़के की ममता बुरी होती है। उनके जी में फ़ौरन् यह ख़याल आया कि अगर लालजी को कुछ लालच दिया जाय, तो शायद पते पर आ जाय। यह सोचकर ड्राइवर से बोले—“कार स्टार्ट करो।” सकटे से कहा—“चलो सकटे ! मोहनपुर चलेंगे।”

सकटे और नवाब साहब कार पर सवार हो गए। मोहनपुर वहाँ से सिर्फ़ एक मील के फ़ासले पर था। मगर

कच्चा रास्ता होने के कारण पंद्रह मिनट रास्ते में लग गए।
आखिरकार मोटर लालजी के दरवाजे पर पहुँची।

सकटे ने आवाज देकर लालजी को पुकारा। जब वह बाहर निकला, तो उसने देखा, सामने नवाब साहब खड़े हैं। उसने सलाम किया, और इतनी रात में आने का कारण पूछा। सकटे ने सारा हाल कह सुनाया। तब लालजी बोला—“मैं इतनी रात गए नहीं जाने का, फिर पास-पड़ोस का वाक्या होता, तो और बात थी।”

“ऐसी बातें न करो लालजी !” नवाब साहब ने आजुर्दगी से कहा—“मुझे सख्त अफसोस है कि सिपाहियों ने उस रोज़ तुम्हें बहुत सताया, और सायद तुम उसी वजह से यहाँ भाग आए हो। मगर चूँकि इस वक़्त मेरा लड़का मौत के मुँह में है, तुम्हें ऐसा न सोचना चाहिए।”

“मैं अब कुछ तुम्हारी रिआया तो हूँ ही नहीं नवाब साहब ! अब तो मेरी मरजी है, जाऊँ, चाहे न जाऊँ। उस रोज़ तुम्हारी मरजी थी कि मुझे पिटवा डाला। जिसे हमारी हमदर्दी नहीं, हम उसके साथ हमदर्दी करें ? ख़ुब रही !”

“नहीं-नहीं, ऐसा न कहो भाई लालजी ! मैंने तुम्हारे साथ नाइंसाफी की, मेरी ग़लती माफ़ करो।”

“कैसे माफ़ करूँ ? मैं पिटने-कुटने का रंज न सह सका।
आखिरकार अपनी २० बीघा मौरुसी ज़मीन छोड़कर,

यहाँ आकर बस रहा । मेरे जिगर में अब तक उस बेइज्जती का घाव हरा है ।”

“अच्छा बोलो, तुम कितनी ज़मीन चाहते हो ? मैं उतनी ही ज़मीन तुम्हें माफ़ी में दूँगा । मुझसे क़सम ले लो, बशर्ते कि मेरा फ़हीम मौत के मुँह से बच आए ।”

लालजी कुछ नर्म हुआ । बोला—“अच्छा, चलने को तो मैं चलता हूँ, मगर मैंने सुना है, मतलबी बावला होता है । वह अपना मतलब बनाने के लिये हर तरह के वादे करता है, मगर उसके सारे वादे भूठे होते हैं । आपके वादे पर कैसे विश्वास करूँ ?”

नवाब साहब एक साँस में हज़ारों क़समें खा गए, और बोले—“लालजी ! अगर मेरा लड़का तुम्हारी तरकीब से जी गया, तो मेरा वादा कभी भूठा नहीं होगा । जितनी तुम्हारी मौरूसी ज़मीन है, सब तुम्हें माफ़ी में दे दूँगा !”

लालजी नवाब साहब के साथ कार पर बैठ गया, और कार बड़ी तेज़ी के साथ लखनऊ की तरफ़ रवाना हो गई ।

आध घंटे में नवाब साहब मकान पर आ गए । पचासों आदमियों की भीड़ लगी हुई थी । फ़हीम बिलकुल मुर्दा-सा पड़ा था । सारा शरीर पीला पड़ रहा था । घर के अंदर औरतें चीख-पुकार मचा रही थीं । लालजी ने जाकर फ़हीम को देखा । बोला—“सरकार ! इनमें तो अब कुछ रहा

नहीं ! मगर देखो: तरकीब करता हूँ । देखना है, क्या फल निकलता है ।”

लालजी ने कोई जड़ी अपने पास से निकाली, और उसे खूब बारीक पीसकर नाक में फूँका । वही कुछ थोड़ी-सी पानी में घोलकर मुँह में डाली । कुछ देर बाद साँसें चलती हुई सबको मालूम हुई । लोगों को कुछ आशा हुई कि शायद अब फहीम बच जाय ।

लालजी ने दुबारा फिर दवा खिलाई, और साथ ही मंत्र से कुछ झाड़ू-फूँक भी की । नतीजा यह निकला कि ३-४ घंटे में फहीम सचमुच होश में आ गया । अब तो चारों ओर लालजी की तारीफों के पुल बाँधे जाने लगे । खूब खैरातें की गईं । गरीबों को खाना बाँटा गया । मगर उस दिन मित्र-मंडली की दावत मुस्तबी कर दी गई । लालजी को नवाब साहब ने उसी समय माफ़ी का परवाना लिख दिया, और सबेरे कार के ज़रिए लालजी को उसके मकान पहुँचा दिया गया ।

पं० राधेश्याम मामूली हैसियत के मनुष्य थे। अपनी मेहनत की कमाई की एक-एक पाई लगाकर अपने लड़के मदनमुरारी को बी० ए० पास कराने के बाद वह उसके लिये नौकरी तलाश करने में लगे हुए थे। मगर हर जगह सिफारिश की जरूरत पड़ती थी। वह एक दफा इसी सिलखिले में नवाब लटकन से भी मिल आए थे, और उनके वायदे पर आस लगाए बैठे थे। कई महीने बीत गए, मगर कोई ठीक-ठीक जगह लड़के के लिये समझ में न आती थी। वह यही सोचते थे कि किसी सरकारी नौकरी का ढंग दिखाई दे, तो नवाब लटकन से सिफारिश पहुँचाकर लड़के को बहाल कराऊँ। उनको हाल ही में पता चला कि वहाँ के जिला-जज का तबादला हो गया है, और नए आए जज साहब नवाब लटकन के अजीजों में से हैं।

पं० राधेश्याम ने लड़के से एक ऐप्लीकेशन उनके पास भिजवा दी। होनी की बात कि उसी महीने की २८ तारीख को उम्मीदवारों के चुनाव की तारीख निश्चित हुई थी। पं० राधेश्याम ने सोचा, अभी आज २१ तारीख ही है, सात दिनों का खासा अंतर है। अभी कोशिश की जा सकती है। यही सोचकर शाम के वक्त, पं० राधेश्यामजी नवाब लटकन

के यहाँ पहुँचे। नवाब साहब ने जो देखा, तो तड़पकर बोले—“अल्लाह ! भाई राधेश्यामजी ! आइए-आइए । कहिए, मिज़ाज तो अच्छा है जनाब का ?”

“हाँ, सब परमात्मा की दया है।” कुरसी पर बैठते हुए पं० राधेश्याम बोले—“कहिए, आप तो कुशल-मंगल से हैं ?”

“हाँ भाई साहब, अल्लाह का फ़ज़ल है। अभी १५ दिन हुए, जब फ़हीम को एक बड़े ज़हरोले साँप ने काटा था। मार और खुदा ने रहम किया कि वह बच गया।”

‘कैसे काटा था ?’ राधेश्याम ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा ।

“क्या बताऊँ भाई राधेश्यामजी !” नवाब साहब ने कुछ मुँह बनाकर कहा—“उस नालायक को साँप पकड़ने का मर्ज़ है। एक सफ़ेद साँप ने उसे काट लिया। बड़ा ही ज़हरीला था भाई वह। सिकेंडा में सारा तिस्र पीला पड़ गया, और लड़का बेहसो हरकत हो गया।”

“फिर क्या किया आपने ?”

“मैं कर ही क्या सकता था। डॉक्टर लोगों ने तो सूखा जवाब दे दिया था। मगर मेरे इलाक़े में ही एक लालजी पासो रहता है। भाई ! वह इन मामलों में बड़ा ही चस्ताद है। वह आया, और उसने मुर्दे को ज़िंदा कर दिया।”

“क्यों नहीं, बिद्या ऐसी ही चीज़ है।” पं० राधेश्याम ने गंभीर होकर कहा—“अब तो अपने यहाँ सर्प-विद्या का केवल नाम-ही-नाम रह गया है। हाँ, सुना जाता है कि बर्मा

और आसाम में अब भी इस विद्या के अच्छे जाननेवाले मौजूद हैं।”

“होंगे भाई, जरूर होंगे। मैं पहले इन बातों को बिलकुल भूठ समझता था, मगर नहीं, यह भी सच्चा इल्म है। हाँ, ये बातें तो हो चुकीं। ख़ूब याद आया। आइए, आपको एक नई चीज़ दिखाऊँ।”

नवाब साहब पं० राधेश्याम को एक कमरे में ले गए, जो फ़र्निचर से ख़ूब सजा हुआ था। नवाब साहब ने एक कुरसी की तरफ़ इशारा करते हुए कहा—“देखिए दोस्त ! यह कुरसी मैंने अभी-अभी मँगवाई है। ख़ूबी इसकी यह है कि इस पर बैठे-बैठे ही चारों तरफ़ घूम जाइए, आपको क़तई चठना न पड़ेगा।”

पं० राधेश्याम ने कुरसी का मुलाहिज़ा करते हुए कहा—
“वाक़ई क़ाबिले-तारीफ़ है। कितने में ख़रीदी ?”

“अंदाज़ा कीजिए क़ीमत का।” नवाब साहब ने मुसकराकर कहा।

“मैं भला, क्या अंदाज़ा कर सकता हूँ। मेरे फ़रिश्तों को भी ऐसी चीज़ें नसीब नहीं, और न कभी किसी दूसरे के लिये ही ख़रीदने का मौक़ा पड़ा, तब अंदाज़ा काहे का ?”

“मैंने इसे १५०) में मँगवाया है !” नवाब लटकन ने गरूर से कहा।

“ठीक है, यह चीज इस क्रीमट की जरूर होगी। और, यह फर्शी कालीन भी क्या अभी नई ही मँगवाई है ?”

“हाँ, बिलकुल नई खरीदी गई। १२००) में आई है। अभी उस रोज़ जब लाट साहब की दावत की थी, तभी कमरा सजाने के लिये खरीदी थी।”

“वाकई, नायाब चीज है। भई, बड़े लोगों को चीजें भी खूब मिल जाती हैं। मुझे यहाँ के कई रईसों के यहाँ जाने का वास्ता पड़ा, मगर मैंने आज तक ऐसी कालीन किसी के यहाँ न देखी।”

नवाब साहब अपनी तारीफ़ सुनकर फूले न समाए, बोले—“क्यों यार, बहका रहे हो। सच कहना, क्या वाकई ऐसी चीज है ?”

“अरे, मेरी बात भूठ समझते हैं आप ! किसी के पास हो, तो दिखाए न।”

“यह कहो कि मौक़े पर मिल गई।” नवाब साहब ने शान-भरे लहजे में कहा—“मिस्टर सगीर कहते थे, सारे बाज़ार में बस यही एक नायाब कालीन था।”

“अच्छा, तो यह भाई सगीरहुसैन की मारफ़त खरीदा गया !” राधेश्याम ने ज़रा ऊँची आवाज़ में ताज़्जुब दिखाते हुए कहा—“सचमुच वह बड़ा ही चलता-पुरज़ा और होशियार है। उसकी पैनी निगाह ऐसी चीज़ों पर सात पर्दे फाड़कर पहुँचती है।”

“यही तो हुआ, इसी वजह से मैंने जब-जब साहब लोगों की दावत की, उसी के सिर सारा इंतजाम डाल दिया। फिर वह चाहे सियाह करे या सुफेद, मगर मुझे उसके इंतजाम में हमेशा ही कामयाबी हासिल हुई। अब देखो, वे दोनों कहे-आदम आईने आमने-सामने लगे हैं। हालाँकि मैंने मँगवाए नहीं थे, मगर वह ले आए। मैंने खुशी से इन्हें मंज़ूर कर लिया।”

“यह जोड़ी कितने में आई ?”

“सिर्फ १२५ में। फिर देखिए, इसके हाशिए पर चारों तरफ कितना बढ़िया चौखटो लगा है। ज़रा लकड़ी और उसके काम का मुलाहिजा कीजिए।”

“हाँ, देख रहा हूँ। कारीगर ने अपनी सारी कारीगरी इसमें ख़त्म कर दी है।”

“अच्छा आइए, बारहदरी में चलकर बैठें।”

दोनों बारहदरी में आए। नवाब साहब एक कुरसी पर बैठते हुए बोले—“भाई राधेश्यामजी ! आज आप कैसे इधर आ निकले ?”

“एक ज़रा-सा आपसे ही काम था। आपने यह क्या कहा कि इधर कैसे आ निकले ?”

“इसीलिये कि आप कभी-कभी ही आते हैं।”

“बात यह है नवाब साहब ! कि घर का अकेला आदमी, उस पर मुहरिरी का काम। रात-दिन चक्की पीसना। दूध

मार्गने की फुरसत नहीं। शाम को घर आया। घर की जरूरियात को देखा। खाना बना; खाया और बेहोश-जैसा सो रहा। ऐसी हालत में भला घूमने-फिरने की किसे फुरसत? एक रोज आया, तो आपसे मुलाकात न हुई!”

“अच्छा! मगर भाई, मैं उस दिन मशगूल था एक जरूरी काम में। आपसे मुलाकात न कर सका। माफ़ कीजिए।”

“मुझे कुछ इसकी शिकायत थोड़े है आपसे। हाँ, अगर आप मेरा एक काम कर दें, तो मैं उम्र-भर एहसान न भूलूँ।”

“कहिए-कहिए, ऐसी क्या बात है?”

“सिफ़ारिश कराना है।”

“किससे?”

“जज साहब बहादुर से।”

“कैसी?”

“आपके लड़के मदनमुरारी की अर्जी तो मैंने दे रक्खी है। २८ तारीख को चुनाव होनेवाला है। मैं चाहता हूँ, आप एक सिफ़ारिशी चिट्ठी लिख देते, तो लौंडा भी चार पैसे पैदा करने के क़ाबिल हो जाता।”

“ओहो! तुमने राज़ब किया।” मेज़ पर हाथ मारकर “तब से आप, एक घंटे से ज्यादा हो चुका, मगर यार! अब तक ख़ामोश ही रहे। ख़ैर, कोई मुआयज़ा नहीं। यह

तो काम बस बना-बनाया ही समझो तुम। एक काम करो, अभी तो ६-७ दिन इलेक्शन में हैं, कल शाम को आ जाना, मैं एक खत लिख दूँगा। अब तो मुंशीजी भी दफ्तर बंद करके मकान चले गए।”

“खैर, कोई हर्ज नहीं, कल लिख दीजिएगा।”

“हाँ, कल लिख दूँगा, और तुम्हारा काम फौरन् होगा।”

“अच्छा, तो मुझे अब इजाजत दीजिए, मैं कचहरी से उठकर सीधा यहीं चला आया था।”

“शौक से जोइए, मगर कल आइएगा जरूर।”

पं० राधेश्याम आदाब बजाकर अपने घर चले गए।

नवाब लटकन सचमुच थे लटकन ही। जो कोई उनके पास किसी मतलब से आया, उसे लटका दिया। और, खुद जिस काम को पसंद करते, उसमें खुद ही लटक जाते; चाहे वह काम उनके दीन और शरा के खिलाफ ही क्यों न हो। जाहिरदारी में वह पारसा थे, मगर उसकी पाबंदी मानो उनकी आदत से दूर थी। वह ऐयाश परले सिरे के थे, मगर उनकी ज़बान हमेशा इन बातों के खिलाफ ही खुलती थी। उनके इस रवैए को उनके इने-गिने दोस्त ही जानते थे, जो रोज़ाना उनसे हम-निवाला हम-प्याला रहा करते थे।

जब पं० राधेश्याम चले गए, तब क़रीब-क़रीब रात के आठ बजे थे। उनके जाते ही यार लोग जमा होने लगे। विलायती, देसी शराब की बोतलों के कार्क खुलने लगे, और शराब प्यालों में उँडेली जाने लगी। ख़ूब दौर चले।

इसी बीच में एक साहब, जिनका नाम बेदार था, बोले—“हाँ, ख़ूब याद आया नवाब साहब ! हमारे पड़ोस में एक साहब का गौना होकर अभी-अभी आया है। जोरू क्या है, बस हूर समझिए हूर ! मेरी बीबी की उससे राह-रस्म हो गई ।” शराब का एक घूँट नीचे उतारकर और गज़क मुँह में दाबकर वह फिर कहने लगे—‘मैंने भी उसे

देखा है। खुदा जानता है, दिल काबू में न रहा। मैंने सोचा, ऐसा बढ़िया माल आपकी नज़र क्यों न किया जाय। मैंने सुई-तागा दौड़ाना शुरू किया। आखिरकार मेरी बीबी ने ही उसे ५० पर राज़ी कर लिया।”

“तो क्या हाथ मार गए उस्ताद ?” नवाब साहब ने शराब का प्याला मुँह से लगाते हुए कहा।

“नहीं, आप समझे नहीं। मैं गरीब, भला कहाँ से लाता पचास रुपए ! उसे आपके हक़ में राज़ी कर लिया। उजने कहा, जिस दिन मेरा शौहर घर पर न हो, उस दिन अगर नवाब साहब मुझे बुलाएँ, तो मैं जा सकती हूँ, क्योंकि बड़े, आदमियों से यारी जोड़ना कुछ बुरा नहीं है।”

नवाब साहब बेदार की बातें सुनकर मचल गए, और बोले—‘अगर ऐसी बात है बेदार ! तो तुम उसे लाते क्यों नहीं। कहाँ साले ५० आते हैं, कहाँ जाते हैं। बोलो, कब लाओगे ?’

“अगर आप कहें, तो मैं आज ही ले आऊँ। आज उसका खाविंद कानपुर गया है, और कल वापस होने को कह गया है।”

“ज़रूर ! ज़रूर !! बस, आज ही सही। अच्छा, अब तुम उठो, और जाओ। तुम्हें आने-जाने में कम-से-कम दो घंटे लग ही जायँगे। तब तक १० बजेंगे। देर न करो !”

बेदार उठा, और फौरन् कमरे से बाहर निकल घर को तरफ चल दिया ।

लखनऊ-ऐसे शहर में रंडियों की तादाद बहुत काफी है । कुछ रंडियों ने अपनी रोज़ी कमाने का एक नया ढंग निकाल रक्खा है कि वे किसी-न-किसी रईस की मक़बूज़ा बीबी बनकर उसके घर में रहने लगती हैं । अब बाहरवाले अनजान लोग उन्हें देखकर उन पर रंडी होने का संदेह ही नहीं लाते । ऐसी रंडियों ने कुछ स्त्री और पुरुष अपने दलाल बना रक्खे हैं, जो उन्हें विवाहिता बताकर दूसरों को ठगते हैं । मूर्ख ऐयाश उन्हें घर-गृहस्थ औरत समझकर, खासी रक़म देने पर राज़ी होकर उनसे अपना काला मँह करके अपने को धन्य समझते हैं ।

बेदार भी ऐसी ही रंडियों के दलाल हैं । जब रात के १० बजे का समय हुआ कि ताँगे पर एक रंडी को बिठाकर हज़रत बेदार नवाब साहब की कोठी पर आ धमके ।

नवाब साहब ने देखा, तो फूल पड़े । औरत की उम्र अभी केवल १६ वर्ष की थी । जवानी, उस पर रंग-रूप, नाज़ो अज़ा से भरपूर । फिर भला, नवाब साहब क्यों न फिसल पड़ते । बेदार ने कहा—“नवाब साहब ! यह चाहती हैं कि हम यहाँ से सबेरे चार बजे अँधेरे ही चली जायँ । कोई यह न जान सके कि हम कहीं बाहर गई थीं ।”

नवाब साहब सिर हिलाकर बोले —“ठीक है, ठीक है ।
इनका खयाल बिलकुल ठीक है ।”

कोठी का दरवाजा बंद हो गया, और बेदार अपने घर
चला आया ।

रात गुज़र गई । सबेरे ३ बजे अँधेरे से ही दो पुलिस-
कानिस्टिबिल कोठी के सामने आकर टहलने लगे । ठीक
चार बजे सबेरे हज़रत बेदार भी पहुँचे । उधर नवाब साहब
भी घड़ी का अलार्म सुनकर चैतन्य हो चुके थे । कोठी का
दरवाजा खुला, और मियाँ बेदार अंदर दाखिल होकर
बोले—“नवाब साहब ! राज़ब हो गया ! इसका शौहर
कमबख्त कल रात ही ११ बजे कानपुर से वापस आ गया ।
उसने जब इसे मक़ान पर न पाया , तो इधर-उधर तलाश
किया । आख़िर इसका पता उसे चलता, तो कहाँ चलता ।
मजबूरन् उसने रिपोर्ट थाने में लिखाई । रात-भर पुलिस
दौड़ी-दौड़ी फिरती रही । किसी कमबख्त की फूटी आँखों ने
इसे मेरे साथ आते हुए देख लिया होगा । बस, फिर क्या
था । पुलिस मेरी टटोल में मेरे घर पहुँच गई, और इधर
आपके यहाँ भी आई । मैं बड़ी चालाकी से घर से बाहर
निकलकर इधर भागा । वह सिर्फ़ इस खयाल से कि अगर
आपकी इज्जत पर पानी पड़ गया, तब तो सब कुछ बंटा-
ढार हो जायगा । वह देखिए, सामने, बाहर दो कानिस्टिबिल
टहल रहे हैं ।”

यह दास्तान सुनकर नवाब साहब के होशो-हवास जवाब दे गए । घबराकर बोले—“तब क्या करना चाहिए बेदार ?”

“किसी तरह इन कानिस्टिबिलों को अभी राज्ती कर लीजिए, नहीं तो कोई पुलिस-अफसर आ गया, तो बड़ी मुश्किल होगी ।”

“अच्छा, तो उन्हें बहुत जल्द यहीं बुलाओ ।”

बेदार कानिस्टिबिलों के पास आकर उन्हें बुला ले गया । नवाब साहब उस समय थर-थर काँप रहे थे । भट से सेफ खोलते हुए बोले—“मैं चाहता हूँ, तुम दोनो जल्द-से-जल्द पहरा यहाँ से हटा दो । बोलो, क्या चाहते हो ?”

एक बोला—“पीछे दारोगाजी आ रहे हैं । कैसे बताऊँ ?”

“नहीं, जल्द बोलो । तुम यहाँ से फौरन् जाकर उनसे कहो, वहाँ कोई नहीं है । बोलो, क्या चाहते हो ?”

दूसरा बोला—“अच्छा, ५०० ही दे दीजिए ।”

“अरे, इतनी लंबी रकम !” नवाब साहब ने घबराकर कहा ।

‘तो क्या आपकी इज्जत थोड़ी है ?’ उस सिपाही ने जवाब दिया ।

नवाब साहब ने सोचा, इज्जत करने में वक्त खराब होगा । न-जाने फिर क्या आफत आए । “मरता क्या न करता ।” भट सेफ में से १००-१०० के पाँच नोट निकालकर दे दिए । सिपाही दोनो चले गए । बेदार ने भी रंडी

को अपने साथ लिया, और कोठी से बाहर निकलकर चल दिए। नवाब साहब का धड़कता हुआ दिल अब ठिकाने पर आया, और उन्होंने सुख की साँस ली। चौराहे से आगे बढ़कर—

बेदार, रंडी और दोनों कानिस्टिबिलों ने यह ५०० और रंडीवाले ५० को अपनी हिस्साकशी की शरह के मुताबिक आपस में बाँट लिया।

अब्दुलफ़हीम खिलाड़ी होने पर भी बड़ा ही समझदार था। उसे पढ़ने-लिखने में बड़ी दिलचस्पी थी। उसने अपनी तेज़ फ़हमी की वजह से बहुत थोड़ी उम्र में अर्थात् सोलह साल में ही बी० ए० की डिग्री प्राप्त कर ली।

बी० ए० करने के बाद उसकी तालीम बंद हो गई, और वह घर पर निठल्ला रहने लगा। उसने बारीकी से नज़ीरा और अपनी सौतेली मा के तौर-तरीक़ों पर नज़र डाली, तो बड़ा दुखी हुआ।

उसके दिल को चोट लगी। सोचने लगा—यह तो बड़े ही कलंक की बात है। जब हम-सरोखे लोगों में ही ऐसी गंदगी भरी रहेगी, जो अपनी इज्जत की डींगें मारा करते हैं, तब तो सब कुछ चौपट हो जायगा। यही सोचकर वह नवाब साहब के पास आकर बोला—“वालिद साहब! आपने नज़ीरा और नई अम्मीजान के चाल-ढाल पर कभी कुछ ग़ौर किया? अगर नहीं, तो बड़ा तश्चर्रुब है।”

“क्या?”

“मैं इससे ज्यादा आपसे और क्या अर्ज़ करूँ।”

नवाब साहब सुनकर कुछ देर ख़ामोश बैठे रहे, फिर उठे,

और सीधे नई बेगम साहबा के कमरे में पहुँचे। बोले—
“नज़ीरा कहाँ है ?”

“बाज़ार गया है। कहिए, कुछ काम है क्या ?”

“काम तो कुछ नहीं है, मगर तुमसे एक बात कहनी है।”

“कहिए।”

“बुरा तो न मानोगी ?”

“नहीं-नहीं, बुरा क्यों मानूँगी। शौक़ से कहिए।”

“मेरे कानों में यह आवाज़ आई है कि नज़ीरा की तुम पर नज़र है ! अगर यह बात ठीक है, तब तो बहुत ही बुरा है।”

“वाह ! यह ख़ूब रही !” लेडी साहबा ने ज़रा मुसकराकर कहा—“आपसे कहा किसने ?”

“किसी ने भी कहा, पहले यह बताओ कि यह झूठ है क्या ?”

“झूठ ! सोलह आना झूठ ! ! आपसे कहा किसने ?”

“जब झूठ ही है, तब कहनेवाले का नाम पूछने से गरज़ क्या ?”

“नहीं-नहीं, नाम तो मैं जरूर पूछूँगी। आखिर यह तोहमत मेरे सिर मढ़ी किसने ?”

“नाम पूछकर करोगी भी क्या ?”

“नहीं, तुम्हें मेरी क़सम, नाम जरूर बता दो। मैं भी तो जान लूँ कि मेरा बह दुश्मन है कौन ?”

“अच्छा सुनो, मुझसे आज ही फहीम ने कहा है।”

“ओह ! मैं समझ गई।” बेगम साहबा ने ज़रा तमककर कहा—“उनके भी रंग निराले हैं। मैंने सोचा था, कौन उनकी शिकायत करे, उसी का यह नतीजा !”

“कैसी शिकायत ?”

“बस, उनकी हरकतें कुछ पूछिए मत !”

“नहीं-नहीं, बताओ तो, क्या बात है ?”

“क्या कहूँ आपसे।” आँखों पर आँचल रखकर बोली—
“पहले यह बताइए कि मैं आपकी बीबी हूँ या उस नालायक की ?”

“ऐं ! तुम यह क्या कह रही हो ?” नवाब साहब ने गर्म होकर कहा—“क्या उसने तुमसे कोई बेजा हरकत की ?”

“बेजा हरकत वह बेचारे मुझसे कर ही क्या सकते थे ! हाँ, उन्होंने हाथ डालने की काफी कोशिश की। जब मैं उनके पते पर न आई, तो मुझे तोहमत लगाकर बदनाम ही कर बैठे।” लेडी साहबा ने बनावटी रोनी सूरत बनाकर कहा—“खैर ! मुझे मायके भेज दीजिए। मैं इस घर में रहने से बाज़ आई।”

नवाब साहब गर्मजोशी के साथ उठे, और बाहर चले आए। बाहर फहीम नहीं था, अतः नवाब साहब खामोशी के साथ अपने कमरे में जाकर पड़ रहे।

क़रीब-क़रीब दो घंटे गुज़र गए। शाम के ६ बजने का

समय आ गया। अब तक फहीम वापस न आया था। नूरु ने हाज़िर होकर नवाब साहब को आद्वार बजाया। नवाब साहब ने पूछा—“कौन हो तुम?”

“मेरा नाम नूरबख्श है नवाब साहब!”

“यहाँ कैसे आए?”

“आपसे कुछ पोशीदा बात कहने।”

“कैसी?”

“नवाबज़ादा अब्दुलफहीम के मुताल्लिक।”

“कहो, क्या कहना चाहते हो?”

“आप दोलतख़ाँ साहब को तो जानते ही हैं।”

“हाँ, जानता हूँ।”

“बस, मेरा भी मकान उन्हीं के करीब है। आज ख़ाँ साहब घर पर नहीं थे। आपके साहबज़ादे उनके अहाते में पहुँचे। उनकी लड़की असगरी भी अहाते में ही थी। साहब-ज़ादे भी तो नए जवान ही ठहरे। उससे कुछ ऐसा-वैसा कह बैठे। वह सुनकर गर्म हो गई, और उसने एक क्रयामत पैदा कर दी। अब आओगे, तो जाओगे कहाँ? लोगों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। मैं भी दौड़ता हुआ पहुँचा। जब मैंने उन्हें पहचाना, तो लोगों को समझा-बुझाकर राज़ी किया, और उन्हें बाहर निकाल दिया। नवाब साहब! कितनी बुरी बात है! लोग सुनेंगे, तो क्या कहेंगे? आपकी इज्जत शहर में बहुत बड़ी है।”

“यह सब आज की ही वारदात है ?” नवाब साहब ने आजुर्दगी के साथ कहा ।

“अजी साहब ! आज की, आज की ! अभी कोई दो घंटे हुए होंगे । आप ज़रा उन्हें समझा-बुझा दें । मैं बस यही कहने आया था । अब जाता हूँ । आदाब ।”

नूरु चला गया । नवाब साहब सारी दास्तान सुनकर सन्न रह गए । चिराग जले फ़हीम भी घर आया । नवाब साहब ने उस रोज़ उससे कुछ नहीं कहा, अपने दिल में ही घुटते रहे ।

नजीरा अपनी सरकार साहबा के कमरे की तरफ जा रहा था कि नवाब साहब ने पुकारकर कहा—“क्यों बे नजीरा ! अब तो हर वक्त छैला बना रहता है तू ?”

“हुज़ूर ! मैं क्या छैला बनता हूँ !” नजीरा ने खड़े होकर कहा ।

“मैं यही तो देखता हूँ कि तेरी एक नई पोशाक रोज़ ही बनती है, और हर वक्त तू लकड़-दकड़ ही रहता है । मालूम होता है, अब आपे में नहीं है तू !”

लेडी साहबा कमरे के दरवाज़े पर आ गईं । उन्हें देखते ही नजीरा बिना कुछ जवाब दिए कमरे में दाखिल हो गया । लेडी साहबा ने नवाब साहब से कहा—“नजीरा को खरी-खोटी क्यों सुना रहे हैं आप ? जो कुछ कहना हो, मुझसे कहिए ।”

नवाब साहब भी अंदर कमरे में मसहरी पर बैठते हुए बोले—“एक खिदमतगार को इस तरह नहीं रहना चाहिए, जैसे यह रहता है ।”

“क्यों, यह कैसे रहता है ?” लेडी साहबा ने ज़रा रुख बदलकर कहा ।

“देखती नहीं हो क्या ? नौकर को ऐसा लकड़क रहना चाहिए ? हर वक्त, एक उजली, नई पोशाक, बालों में लेवेंडर, कपड़ों में इत्र ! यह सब आता कहाँ से है ?”

“तो क्या ये चीजें सिर्फ आप ही इस्तेमाल कर सकते हैं ? वह आदमी नहीं है क्या ?”

“आदमी सही, मगर है तो हमारा टुकड़खोर नौकर ही ।”

“हुआ करे, मगर मेरी खिदमत में रहता है ।”

“इमसे मतलब ?” नवाब साहब ने ज़रा आँख बिगाड़कर कहा ।

“मतलब यह कि मैं अपने आदमी को गंदा और मैला रखना पसंद नहीं करती । जैसा चाहती हूँ, रखती हूँ ।”

“तो यह तुम्हारा आदमी है ?”

“तुम चाहे जो कुछ समझो ।”

“सुनता है बे नज़ीरा ! आज से तू इनके पास नहीं रह सकेगा बदमाश !” नवाब साहब ने तैश के साथ खड़े होकर कहा—“और, तुम भी मेरी आँखों में अब धूल डालकर इस साले के साथ सौजे न बड़ा सकोगी । मैं बहुत दिनों से तुम दोनों की हरकतों को बारीकी से देख रहा हूँ, समझीं ।”

“किसी में ताकत नहीं, जो नज़ीरा को मेरे पास आने में रोक-थाम कर सके ।” लेडी साहबा ने गर्म होकर कहा ।

“है, ताकत है, मुझमें ताकत है । देखें, साला कैसे आता है ? अगर आए, तो साले को जान से मार डालूँ ।”

“कौन ? तुम ! ज़रा अपना मुँह तो देखो । तुममें ताकत है रोकने की ! ज़रा खुदा के लिये आपे में रहकर बात करो ।” मुँह बिगाड़कर वह बोली—“समझ लेना फिर तुम्हारी जान की भी सलामती नहीं है ।”

नवाब साहब ज़रा डरपोक भी थे । उन्हें अपनी जिंदगी बहुत प्यारी थी । कुछ नर्म होकर बोले—“इसमें बड़ी बदनामी है, जैसा कुछ तुम्हारा रवैया है ।”

“खुदरा क़ज़ीहत, दीगरा नसीहतवाली मसल न करो, पहले नक़नामी - बदनामी को अपने दिल से पूछो ।”

“वाह ! यह एक ही रही ! मेरी चाल-ढाल क्या ख़राब है ?”

“कह दूँ ?”

“ज़रूर कहो ।”

“क्या यह जायज़ है कि इसकी बीबी पर तुम अपना क़ब्ज़ा करो ? क्या यह जायज़ है कि एक ग़रीब भिखारिन लड़की की असमत के तलाशी बनो ? क्या यह जायज़ है कि रोज़-रोज़ रंडियों और बाज़ारू औरतों को बुलाकर गुलछर्रे चड़ाओ ?” लेडी साहबा ने बड़ी गर्मजोशी के साथ कहा—“और, अगर मेरी ही वजह से तुम्हारी बदनामी है, तो मुझे तलाक़ देकर घर से निकाल दो, फिर देखूँगी, कैसे सुख की नींद सोते हो ?”

नवाब साहब ने सोचा, अब मामला बहुत बेढंगा होता जा रहा है, इसलिये फौरन् कमरे से बाहर निकल आए, और बैठकखाने में चले गए।

मियाँ-बीबी की यह हू-हू नजमा के भी कानों में पड़ गई थी। उसकी मा आजकल अपने मायके चली गई थी। घर में सिर्फ नवाब साहब की मा थी, जो कानों से बहुत ऊँचा सुनती थी। नजमा अपनी सौतेली मा के कमरे में आई, और बोली—“अम्मीजान! यह कैसा भगड़ा हो रहा था अब्बा से?”

“कुछ नहीं, वह मुझ पर नुक़ताचीनी करने लगे। मैंने उनकी सारी बख़िया उधेड़ डाली।”

“हाँ, मैं भी सुन रही थी अम्मी! है तो बड़ा अंधेर; बुढ़े होने को आए, मगर शरम छूकर भी न निकली।”

“तुम्हें मालूम है बेटी! ज़िंदगी वही है, जो ऐश-आराम से कटे। जिस ज़िंदगी में कुढ़-कुढ़ कर मरना पड़ा, उससे तो मौत कहीं अच्छी है।”

“यह तुम ठीक कहती हो अम्मीजान!”

नज़ीरा पान लेने के लिये बाहर चला गया।

थोड़ा ठहरकर मेम साहबा ने नजमा से पूछा—“क्यों, नूरु तुम्हें पसंद है?”

“पसंद की क्या पूछती हो?” नजमा ने मुसकराकर कहा—“उम्र में, सूरत-शक्ल में, तंदुरुस्ती में, सभी बातों में

अच्छा है। बातें तो उसकी बड़ी ही मीठी हैं। कमी क्या है कि पढ़ा-लिखा कतई नहीं है।”

“नजीरअहमद क्या पढ़ा था ? देखो, मैंने उसे पढ़ा लिया कि नहीं। अब उर्दू तो ख़ूब ही लिख-पढ़ लेता है। आगे चलकर मैं उसे थोड़ी-सी अँगरेज़ी भी पढ़ा लूँगी। तुम भी नूरु को पढ़ाने की कोशिश करो।”

“मगर नजीरा तो हर वक़्त तुम्हारे पास रहता है। मुझे ऐसा मौका कहाँ हासिल है।

“अगर मामा, तो एक बात कहूँ।”

“कहो, कहो। भला, तुम्हारी सलाह न मानूँगी ?”

तुम नूरु के साथ भाग जाओ।”

“अरे ! यह तुमने क्या कहा अम्मी !” नजमा ने ठड़ी साँस भरकर कहा—“मुझे यहाँ से भाग जाने पर किसी का भी रंज न होगा। होगा, तो सिर्फ़ तुम्हारा।”

“तुम मेरा भी रंज क्यों करोगी नजमा !” नजमा का हाथ पकड़कर बेगम बोली—“मेरी भी ज़्यादा दिनों अब इस घर में गुज़र न होगी। मैं भी जब मौक़ा देखूँगी, नजीर के साथ भाग निकलूँगी। तुम जहाँ जाना, वहाँ से अपना नाम बदलकर मेरे पास ख़त भेजती रहना। मैं भी मौक़े पर वहीं आ जाऊँगी।”

“मगर तुम यह भी तो सोचो, दुनिया मेरे लिये क्या कहेगी ! एक पढ़ी-लिखी लड़की, और एक कुपड़ के साथ ?”

“उँह ! तुमने भी एक ही कही ! कह तो दिया, पढ़ा लेना । उसकी माहवार आमदनी भी कुछ कम नहीं है । महीने-भर के खर्च के लिये ७०-८० रुपए थोड़े हैं क्या ?”

“खैर देखा जायगा । ज़रा इस मसले पर सोच-विचार लूँ।”



दिन का तीसरा पहर था, जब नवाब साहब और उनकी लेडी साहबा की तू-तू मैं-मैं हुई थी। बाहर आकर अपने कमरे में खामोशी के साथ लेटे हुए सोचने लगे—“नई शादी करके तो मैं आफत में पड़ गया। किसे खबर थी कि यह इतनी बदखसलत निकलेगी। इस चुड़ैल को मेरी इज्जत की ज़रा भी पासदारी नहीं ! लौंडे से वास्ता जोड़ते शर्म भी तो न आई उसे ! उस पर मुँह दर मुँह करता है मुबाहिसा ! क्या खूब ! कहती है, घर से निकाल दो ! तलाक़ दे दो ! मैं ऐसा बुद्धू तो हूँ नहीं कि तलाक़ देकर मेहर का दावा अपने ऊपर कराऊँ ! अच्छा, खैर, रह तो सही, मैंने भी सोच रक्खा है। तुम्हें ऐसा सबक दूँ कि तू भी याद करे। और हाँ, ठीक है। नज़ीरा साला भी जान गया कि उसकी बीवी मेरे पास रहती है। तभी मरदूद ने यह चाल खेली। अगर मैं उसकी मनकूहा पर हाथ न डालता, तो शायद वह भी ऐसी हरकत न करता। मगर मैं क्या करूँ। मैंने जान-बूझकर उसकी बीवी को नहीं अपनाया। मैं उसके दिलफ़रेब हुस्न को देखकर पागल हो गया। मजबूरी में ही मैंने उस पर हाथ डाला। हालाँकि मैं समझता हूँ, वह अब भी मेरे पंजे में रहते हुए खुश नहीं है।

“इधर नजमा भी पूरे १८ साल की हो गई । शादी कर देने के काबिल है । नजीरा का घर में कदम जमा हुआ ही है, वे दोनों हमनिवाला हमप्याला हैं । अगर नजीरा ने नजमा की आबरू लेनी चाही, तो वह बहुत जल्द कामयाब हो सकता है । खैर, मैं अब जल्द-से-जल्द नजमा की शादी कर देने का प्रोग्राम बनाऊँ, उसके बाद, किसी दूसरे काम में हाथ डालूँ, यही मुनासिब है ।

“वह चुड़ैल घर में बैठी-बैठी मेरे चाल-चलन पर नुक़ता-चीनी करती है । यह नहीं जानती कि हम मर्द हैं । मर्दों के चाल-ढाल कुछ भी हों, उससे खानदान में कोई दाग़ लगता है ? फिर हम तो नवाब-घराने में पैदा हुए हैं । अमीरों, नवाबों का तो हमेशा से यही शग़ल रहा है । मुग़लिया खानदान में जितने भी बादशाह गुज़रे, सबका यही दस्तूर रहा । मगर उनमें से किसके नाम पर बुराई थोपी जाती है ? कमबख्त कहीं की ! अपनी हरकतों पर शरमाती नहीं, हमारे ऊपर आवाज़ा कमती है । अच्छा खैर, देखा जायगा । तू भी समझेगी, किसी भले आदमी से पाला पड़ा था ।”

नवाब साहब अपने ख़याली समुद्र में यों ही डूबते-उतराते बह रहे थे कि पं० राधेश्यामजी आ गए । शाम के सात बज चुके थे । उन्होंने आकर नवाब साहब को सलाम किया, और एक कुरसी खींचकर बैठ गए ।

नवाब साहब भी पलंग से उठे, और करीब की कुर्सी पर आकर बैठ गए। नवाब साहब के चेहरे के खतो खाल इस बात की गवाही दे रहे थे कि वह इस समय गहरी चिंता में डूबे हुए हैं। पं० राधेश्याम ने कहा—“कहिए, आपका मिजाज कैसा है?”

“अच्छा हूँ। अल्लाह का फजल है।”

“चेहरे पर कुछ चिंता बाहिर हो रही है आपके।”

“नहीं-नहीं, कोई खास फिक्र नहीं है।” नवाब साहब ने अपनी परेशानी छिपाते हुए मुसकराकर कहा—“कुछ यों ही इलाके की उलझनों ने तबीयत को परेशान बना रक्खा है। मैं बाहर ही जाने की तैयारी कर रहा था कि आप तशरीफी ले आए।”

“तो आज तो चिट्ठी लिख दें आप।”

“हाँ-हाँ, आपकी वजह से तो ठहरा ही रहा। लाइए, अभी लिख दूँ। आज मुंशीजी से लेटर-पैड और लिफाफे लेकर मैंने पहले ही रख दिए थे।”

“तो क्या फौनटेनपेन दूँ?” पं० राधेश्याम ने उत्सुकता से कहा।

“नहीं, खत का मजमून? आपने तो बना ही लिया से होगा?”

“नहीं, मैंने तो कोई मजमून नहीं बनाया!” पं० राधेश्याम ने अकचकाकर कहा।

“अरे, राजब किया आपने ! मुझे क्या खबर कि अभी तक आपने मजमून नहीं बनाया ।”

“तो खैर, मजमून न सही, वैसे ही लिख दीजिए ।”

“यह आपने एक ही कही ।” नवाब साहब ने बनावटी मुसकान के साथ कहा—“सिकारिशी खत और बिला मजमून बनाए ही ?”

“तो खैर, मैं अभी मजमून बनाता हूँ ।” जेब से कलम-कागजा निकालते हुए पं० राधेश्याम ने कहा—“मजमून बनाते कितनी देर लगती है ।”

“भाई राधेश्यामजी ! आप नहीं समझते, सिकारिशी खत लिखना कोई हँसी-खेल नहीं है । लिखा जाय, तो ऐसा लिखा जाय कि तीर निशाने पर पहुँचे । इसके लिये काफ़ी गौरो खोज करना पड़ेगा । अच्छा खैर, रहने दीजिए । अब आप कल इसी वक्त तशरीफ़ ले आवें । मैं खुद फ़ुरसत के वक़्त मजमून बनाकर खत लिख रक्खूँगा ।”

“खैर, जैसी आपकी मरज़ी । मैं चाहता हूँ, कामयाब हो जाऊँ ।”

“कामयाब तो आप हैं ही । इसके लिये सोच-विचार करने की क्या जरूरत ? वह तो काम मेरा अपना ही है ।”

पं० राधेश्याम सुनकर खुश हो गए और बोले—“बस, यही मुझे चाहिए । अभी छ दिन बाकी हैं ।”

“अरे, छ दिन तो बहुत हैं ! अगर एक घंटा पहले का भी

वक्त हो, तब भी तो तुम्हारा काम बन सकता है भैया
राधेश्याम !”

राधेश्याम प्रसन्न चित्त उठे, ओर सलाम करके अपने
घर चले आए ।

दूसरे रोज जब पंडित राधेश्याम शाम को नौकरी से फुरसत पाकर घर आए, तो उनके सिर में हल्का-हल्का दर्द हो रहा था। वह आते ही खाट पर चुपचाप पड़ रहे। इतने में मदन-मुरारी भी बाहर से आया, और बाप के पास जाकर उसने पूछा—“बाबूजी ! आज २४ तारीख हो गई, आप नवाब साहब से सिकारिशी खत नहीं लाए ? अब तो चार हो दिन बाकी हैं चुनाव के !”

पंडितजी ने एक ठंडी साँस लेकर जवाब दिया—“पराए हाथ का काम, क्या करूँ, मेरा बस नहीं चलता। दो रोज से बराबर दौड़ रहा हूँ। कल शाम को भी गया था। नवाब साहब से भेंट नहीं हुई। आज जी अच्छा नहीं है, मगर थोड़ी देर में, जैसे भी होगा, जाऊँगा—सब्र करो। उम्मीद है, उन्होंने चिट्ठी लिखकर जरूर रख छोड़ी होगी।”

“कहीं वह ऐन मौके पर धोखा न दें, बड़े आदमी हैं।”

“ऐसी उम्मीद तो नहीं है, आगे ईश्वर की जैसी मरजी।”

“मतलब यह है कि अगर उनसे काम न बनता हो, तो कोई दूसरा जरिया तलाश करूँ ?”

“नहीं-नहीं, ऐसा न होगा। वह बड़े नेक-दिल हैं। परसों

ही तो उन्होंने मुझसे खुद ही काम बनाने का पक्का वादा किया है।”

“तो खैर, कोई बात नहीं।”

बाप-बेटे में ये बातें हो ही रही थीं कि छोटी लड़की ने आकर कहा—“पिताजी, भोजन तैयार है।”

दोनों बाप-बेटे उठे। खाना खाया। पं० राधेश्यामजी कपड़े पहनकर नवाब साहब के यहाँ पहुँचे। मालूम हुआ, नवाब साहब अंदर घर में हैं। पंडितजी आराम से एक कुर्सी पर बैठ गए। बैठे-बैठे आध घंटा व्यतीत हो गया, तब नवाब साहब बाहर निकले। साहब-सलामत होने पर नवाब साहब ने कहा—“आप कितना आए तो होंगे जरूर, मगर मैं बड़े ही जरूरी काम से बाहर गया था। न मौजूद मिलने की माफ़ी दीजिए भाई साहब!”

“आप भी क्या बातें करते हैं।” राधेश्याम ने कहा—“संसार में काम तो सबके पीछे एक-न-एक लगा ही रहता है।”

“हाँ, तो आप खत के लिये ही आए हैं, या और भी कोई काम है?”

“और कोई काम नहीं। खत के लिये ही आया हूँ।”

“तो अब खत लिखने की कोई जरूरत नहीं है भैया राधेश्याम, कल ही मुझे एक मेरे अजीजा हैं, उनका खत मिला था कि आ रहे हैं, और वह आज आ भी गए। वह इन दिनों बनारस में डिप्टी कलक्टर हैं, और मज़ा यह कि उनका और

जज साहब का दोस्ताना भी है, और रिश्ता भी। मैंने सोचा, अब खत लिखने की क्या ज़रूरत। वहीं खुद जाकर, हाथ पकड़कर आपका काम क्यों न करा दें।”

“बड़ा अच्छा है।” राधेश्याम ने प्रसन्न होकर कहा—
“इससे अच्छा मौका और फिर निकलेगा ही कब।”

“खैर, वैसे तो मैं उनसे आज ही आपकी मुलाकात करा देता, मगर चूँकि वह इस वक्त बाहर टहलने जा चुके हैं, रात में ६-१० बजे तक शायद वापस होंगे, तब तक बेवक्त हो जायगा। अब आप कल सबेरे ७। बजे तशरीफ़ ले आएँ, तो उनसे मुलाकात भी हो जायगी, और काम बनने का सोधा रास्ता भी निकल आएगा।”

“बहुत खूब ! बहुत खूब ! मैं राजी हूँ। सबेरे ७। बजे हाज़िर हो जाऊँगा। अच्छा आदाब अर्ज, अब जाता हूँ।”

“हाँ-हाँ, शौक़ से जाइए। मगर कल सबेरे ज़रूर आ जाइएगा।”

“हाँ-हाँ, आ जाऊँगा।” यह कहते हुए पं० राधेश्याम मन-मोदक खाते प्रसन्नता के साथ घर की ओर चल दिए।

दूसरे दिन सबेरे ठीक ७। बजे वादे के मुताबिक़ पंडितजी नवाब साहब के घर पहुँच गए। अभी नवाब साहब कुल्ती-पाख़ाना से निवृत्त होकर बाहर न निकले थे। पंडितजी को उनका इंतज़ार करना पड़ा।

नवाब साहब आते ही बोले—“आप आ गए ?”

“हाँ, मुझे तो बैठे-बैठे आध घंटा गुज़र गया। यहाँ ठीक ७। बजे आ गया था।”

“मगर अफसोस है। वह मेरे अजीज़ आज सबेरे ६। बजे ही सूट-बूट पहनकर कहीं टहलने चले गए।”

“आपने तो ७। बजे का टाइम मुझे बताया था।”
पंडितजी ने दुखी होकर कहा—“अब क्या करना चाहिए?”

“आप उदास क्यों होते हैं? बात यह थी कि कल रात में उनसे तुम्हारे मुतअल्लिक कुछ कह न सका। मेरा खयाल था, वह मेरा तरह ८ बजे ही घर से बाहर निकलेंगे। खैर, कोई हर्ज नहीं। आप कल सबेरे सूरज निकलते ही आ जायँ। मैं आज रात में उनसे जिक्र भी कर लूँगा।”

“खैर, जैसी आपकी मरजी। मगर भूलना नहीं।”

“कैसी बातें करते हो भैया राधेश्याम! काम अपना है कि किसी ग़ैर का?”

“हाँ, यही तो मैं भी समझता हूँ।”

“ज़रूर याद रखूँगा।”

“तो अब मैं जाता हूँ। अभी नहाना-धोना, खाना-पीना है। फिर कचहरी जाना है।”

पंडितजी सलाम करके चले गए।

अगले रोज—

“पिताजी, उठिए, सबेरा होने को आ गया।” मदनमुरारी ने बाप को जगाते हुए कहा।

पं० राधेश्यामजी उठ बैठे। पूछा—“क्या बजा है?”

“शा बज रहे हैं पिताजी।”

“तो ठीक है, आज डिप्टी साहब से मुलाकात जरूर हो जायगी।” यह कहकर वह उठे, और बहुत जल्द जरूरी कामों से छुट्टी पाकर करीब ६ बजे मकान से चल दिए, और सीधे नवाब लटकन की कोठी पहुँचे।

नौकर-चाकर जाग चुके थे। कोठी का द्वार खुला था। पंडितजी बड़े इतमीनान से बारहदरी में जाकर बैठ गए। उन्हें बैठे-बैठे जब ८ बजे, तब नवाब साहब अंदर से निकलकर बाहर आए। आते ही बोले—“कब से बैठे हैं आप?”

“आज तो मैं करीब ६ बजे ही यहाँ आ गया था।”

“मगर मुझे बड़ा अफसोस है कि अब डिप्टी साहब से आपकी मुलाकात नहीं हो सकती।”

“क्यों?” पंडितजी ने सकपकाकर कहा।

“वह तो बनारस चले गए।”

“चले गए ! कब ?”

“कल रात, एक बजे की गाड़ी से ।”

“अभी जानेवाले तो थे नहीं ?”

“हाँ, काम जरूरी आ पड़ा । एक तार आया था सरकारी ।”

“तो अब क्या किया जाय नवाब साहब ?”

“यही तो सोच रहा हूँ मैं भी ।”

“यह सब मेरा दुर्भाग्य है !” पंडितजी ने अनमने होकर कहा—“अब आप यह करें कि बस एक खत ही लिख दें, जो कुछ होना है, हो जायगा । आज सचाइस हो ही गई ।”

“यही तो मैं भी सोच रहा हूँ कि खत लिखूँ, तो क्या लिखूँ ?”

“क्यों ? खत लिखने में भी कोई अड़चन है क्या ?”

“हाँ, कुछ थोड़ी-सी है ।” नवाब साहब ने ज़रा मुँह बनाकर कहा ।

“क्या ?”

“बात यह है, राधेश्याम !” नवाब साहब ने अपना सिर खुजाते हुए कहा—“आपको शायद पता न हो । मेरी उनकी दिलशिकनी बहुत दिनों से चली आती है । ऐसी हालत में अगर मैं खत लिखता हूँ, और उन्होंने उसकी कुछ परवा न की, तो ?”

“फिर क्या सोच रहे हैं आप ? मेरा और कोई वसीला भी नहीं । न मैंने किसी और तरफ निगाह ही डाली है ।”

“हाँ, याद आया । बस, यह ठीक रहेगा । मैं अपनी वालिदा से मशविरा करूँ इस बारे में ।”

“क्या उनका कुछ जोर पड़ेगा इस मामले में ?”

“हाँ, क्यों नहीं । उन्हीं का तो सीधा वास्ता है जज साहब से ।”

“तो उन्हीं से मशविरा कीजिए ।”

“मगर इस वक़्त तो यह भी मुमकिन नहीं । वह आज यहाँ नहीं हैं ।”

“कहाँ चली गईं ?”

“वह भी तो डिप्टी साहब के साथ चली गई रात को ।”

“तब आएँगी कब ?”

“आज शाम तक आ जायँगी मोटर से ।”

“अगर न आई, तब ?”

“नहीं, जरूर आ जायँगी ।”

“और, देखिए, तक्रदीर क्या रंग लाती है ।”

“नहीं-नहीं, वह जरूर आ जायँगी । और, उनके आने पर ख़त भी लिख जायगा ।”

“मगर ऐसी कोशिश कीजिए” पंडितजी ने बड़ी आजुर्दगी के साथ कहा— ‘कि मेरा काम बन जाय । बस आज-भर का ही वक़्त है ।”

पंडितजी बड़ी बेदिली से उठे, और चले गए। उन्हें सारे दिन बड़ी बेचैनी रही। किसी काम में जी न लग रहा था। दिन काटना मुश्किल हो गया। शाम को कचहरी से उठकर सीधे नवाब साहब के यहाँ पहुँचे।

नवाब साहब अपनी बारहदरी में बैठे हुए थे। पंडितजी भी जाकर बैठ गए, और पूछा—“कहिए, क्या रहा?”

नवाब साहब ने मुँह बनाकर कहा—“भाई ! वह भी मामला फ़ैज हो गया।”

“कैसे?” पंडितजी ने निहायत रंजीदगी से कहा।

“बात यह है कि मा की फूफी के दामाद के लड़के हैं जज साहब। उनसे हम लोगों का कोई सीधा रिश्ता तो है ही नहीं। हाँ, वह हम लोगों को मानते थे जरूर। अभी परसाल जब उनकी लड़की की शादी हुई थी, हम लोग शरीक न हो सके, तभी से वह नाराज़ हैं। मा ने कहा, ऐसे घमंडी आदमी को सिफ़ारिशी ख़त लिखना बेकार है।”

पंडितजी अपना माथा पकड़कर बैठ रहे। उनकी सारी आशाएँ ख़त्म हो गईं। कुछ देर ख़ामोश बैठे रहे, फिर उठे, और सीधे अपने घर चले आए।



[१७]

नवाब लटकन के शोकर ने नौकरी छोड़ दी थी, और उसकी जगह पर नौकरी कर ली थी नूरु ने। नूरु को नौकर रखने में नजमा ने भी काफी कोशिश की थी। अब इस प्रकार नवाब साहब के यहाँ नूरु, नज्जीरा, नजमा, नई बेगम साहबा, इन चारों की टोन्नी जमा हो गई थी, अब्दुलफ़हीम के खिलाफ़ साजिश करने के लिये। १८-५ बार दो-चार और-और आदमियों ने फ़हीम के मुतअल्लिक नवाब साहब से शिकायतें कीं, जिनका फल यह निकला कि नवाब साहब जी-जान से अपने लड़के फ़हीम के खिलाफ़ हो गए।

एक दिन नवाब साहब ने कहा—“फ़हीम ! मैं तुम्हारी शिकायतें सुन-सुनकर थक चुका हूँ। आखिर कब छोड़ोगे अपनी ये नाशायस्ता हरकतें ?”

फ़हीम ने चौंककर कहा—“मैं मतलब ही नहीं समझा आपके फ़रमाने का। कैसी मेरी नाशायस्ता हरकतें ?”

“यह लो ! अब उलटा मुझसे सवाल हो रहा है ! शर्म तो आती नहीं नालायक को।” नवाब साहब ने ज़रा गर्म होकर कहा।

फ़हीम अपने पिता की कठोर बातें सुनकर तिलमिला

उठा। उसमें सचमुच कोई बुराई थी नहीं। यह तो केवल उसके दुश्मनों की साजिश थी। वह बोला—“विला वजह ही मतऊन करना जायज नहीं है किसी को। आपका फर्ज था पेश्तर तसदीक कर लेने का। अगर वाकई मेरी गलती होती, तो मैं उसका सच्चावार बनता। यों ही बक-भक...”

“बस, ज्यादा जुबान न चलाओ।” नवाब साहब उठकर बैठ गए, और कड़ककर बोले—“मैं खूब तसदीक कर चुका हूँ तुम्हारी करतूतों की।”

“आपने मुझे मिट्टी ही समझ रक्खा क्या ?” फहीम को भी गुस्सा आ गया, और तड़पकर बोला—“दिल और जिगर है मेरे भी। कुछ आप ही दिलवाले नहीं हैं।”

“अबे नालायक ! बड़ा दिलवाला बनता है ! कमबख्त को देखो तो, मुझसे मुँहजोरी करने पर तैयार है !”

“मैं बेजा कुछ नहीं कहता। आपको कोई हक नहीं मुझ पर बेजा दबाव डालने और इस तरह गर्मी दिखाने का।”

“मुझे हक नहीं ? और तुम्हें हक है ?” नवाब साहब ने ज़रा मुँह बनाकर कहा।

“मैं फिर कहता हूँ, वाकई आपको हक नहीं। अब और ज्यादा मजबूर न कीजिए मुझे ज़बान खोलने पर।”

“अच्छा, अब आप मेरे आका बन रहे हैं ! मुझ पर हुक्मत जताई जा रही है ! बाह, खूब रही !” नवाब साहब मारे

गुस्से के दाँत किटकिटाने और होंठ चबाने लगे। फिर बोले—“अब तुम्हें भी इस घर में रहने का कोई हक नहीं। निकल, अभी निकल हमारे घर से।”

फ़दीम को भी गुस्सा आ गया। कौरन् नवाब साहब के सामने से उठ खड़ा हुआ, और सीधा मकान में जा दाखिल हुआ।

फ़दीम की मा आजकल अपने मायके में थीं, इसलिये उसने घर में पहुँचकर कौरन् अपनी जरूरी साथ ले जाने-वाली चीज़ें बाँधीं, और रात की गाड़ी से अपने मामू के यहाँ रवाना हो गया।

“एक मुसीबत हो, तो भेलूँ ; यहाँ तो आपदिन रोज ही नई आफत घेरे रहता है ।”

“बजा फरमाते हैं आप । जिंदगी के झमेले तो भुगतना ही पड़ते हैं, मगर जो मामले जरूरी होते हैं, उन पर निगाह पहले जातो है ।”

“यह ठीक है, मगर यह भी तो सोचो कि आखिर मैं क्या करूँ ? लगान इस साल चला नहीं । दावतों की और चंदे-वाली रकम की वसूलयाबी रही एक तरफ, नई बीबी साहबा ने अभी-अभी कल ५००) पर पानी फेरा । अब मियाँ सगीर ! तुम्हीं गौर करो ज़रा । कहाँ से चंदे की रकम लाऊँ, जो ‘सर’ बन सकूँ ।”

“क्यों, बेगम साहबा ने क्या किया ?”

“अजी, कुछ न पूछो । जाने कहाँ की सनक सूझी । एक मशीन के लिये ऑर्डर भेज दिया, और वह खरीदी गई पूरे ५००) में, जानते हो क्यों ? बाल घुँघराले बनाने के लिये ।”

“मगर खैर । वह भी उनका शौक था, पूरा हो गया । अगर आपने सहूलियत से मँगा दी, तो और भी अच्छा रहा, वरना वह जिद्द करके मँगा लेती ।”

“अरे, ज़िद की न कहो। नज़मा की भी तो मा है। ज़िद करके देखें न। वह तो यों कहो कि मैंने सिविल मैरिज करके एक गुनाह अपने सिर लाद रक्खा है। बस, इसी से डरता हूँ।”

“खैर, इन बातों को छोड़िए, जो होना था, हो गया। मगर मेरा कहना यह है कि मौका बार-बार नहीं आता। इस वक़्त अगर आप लड़ाई के चंदे में १००० दे दें, तो मानो मुफ़्त में ही ‘सर’ का ख़िताब मिल गया आपको।”

“आख़िर क्या करूँ ? कहाँ से लाऊँ रक़म ?”

“किसी भले आदमी से क़र्ज़ ले लीजिए।”

“अच्छा खैर, सोचूँगा।”

दोनों बैठे-बैठे यों ही बातें कर रहे थे कि अदालत के एक चपरासी ने आकर सलाम किया, और अपने भोले से एक समन निकालकर पेश किया। नवाब साहब ने समन पढ़ कर सगीरहुसैन से कहा—“यह लो, यह दूसरी आफ़त और आई सिर पर !”

“क्या है ?”

“नालायक़ फ़हीम ने जायदादी हक़ का दावा दायर कर दिया।”

“कैसा ?”

“अरे भाई ! वह अपना हक़ दिखाकर ज़मींदारी का बटवारा चाहता है।”

नवाब साहब ने समन की पुस्त पर दस्तखत करके तामीन पूरी कर दी। आधा टुकड़ा ले लिया, और आधा चपरासी को देकर उसे बिदा कर दिया। चपरासी चला गया। सगीर मियाँ ने पूछा—“कहीम ने ऐसा क्यों किया ? कहाँ है आज-कल वह ?”

“भाई, वह बड़ा नालायक था। मैंने उसे घर से निकाल दिया, अब उसने यह रंग दिखाया।”

“खैर, उससे भी निबटा ही जायगा।”

“हाँ, निबटना तो है ही।”

नवाब साहब कुछ देर खामोश बैठे सोचते रहे। उसके बाद बोले—“एक मशविरा दो सगीर ! हाकिम-अदालत को एक माकूल डाली पेश की जाय, तो कैसा रहे ?”

“वाह ! वाह ! क्या बात सोचो है !” सगीरहुसैन ने तड़पकर कहा—“बहुत मुमकिन है, हम कामयाब हो जायँ।”

“तो बस, ठीक है। यही रही।”

इसके बाद मोटर तैयार हो गई, और नवाब साहब सगीरहुसैन के साथ उस पर बैठकर बाहर चले गए।

नवाब लटकन ने सरकारी वार-फंड में १०००) का चंदा भी दे दिया। माहबों को दावतें भी कीं। उधर अब्दुलफहीम का जायदादी बटवारा भी हो गया। इधर खानगी खर्च भी दिनोंदिन बढ़ते ही जाते थे। यही कारण था कि उनकी माली हालत अब बहुत ही गिर चुकी थी। नज़मा की शादी करने की भी फिक्र में थे। मगर यह भी सोच रहे थे कि शहर में मेरा बड़ा नाम है, लिहाज़ा वगैर काफ़ी खर्च उठाए शादी करना बहुत मुश्किल हो जायगा।

एक दिन उनके यारों की मंडली जमा हुई। करीमू बोला— हु.जूर! मैं कुछ अर्ज करूँ ?”

“कहो, क्या कहना चाहते हो ?”

“मैं यह सोच रहा हूँ कि हु.जूर की आमदनी अब बहुत गिर गई है, उसकी कोई सजीत होनी चाहिए।”

“बात तो बिलकुल ठीक है। मगर करूँ भी, तो क्या ?”

“मैं चाहता हूँ, आप चार-अ तंगे बनवाकर बिराए पर चलवाएँ, आमदनी खासी रहेगी।”

“बहुत ठीक ! बहुत ठीक !” हफी.जू ने तड़पकर कहा—
“खासी आमदनी होगी। मगर घोड़े बढ़िया हों।”

“वैह, तुमने भी क्या बात कही।” नज़मू ने कहा—

“हमारे नवाब साहब एक-से-एक बढ़िया घोड़े रख सकते हैं, अगर ताँगे बनवाएँ, तो ।”

“मगर यह तो सोचो,” नवाब साहब ने हुक्क़े में कश लगाते हुए कहा—“नौकर ही सारी आमदनी चट कर जायेंगे, तो ?”

“ऐसा क्यों करेंगे आप !” करीमू ने कहा—“हम लोग तो आपके खादिम वैसे भी हैं । हमीं जोतेंगे ।”

‘एक ताँगे पर कितनी आमदनी होगी रोज़ाना ?’ नवाब साहब ने हुक्क़े का धुआँ छोड़ते हुए कहा ।

“मैं बताता हूँ, सुनिए ।” नजमू ने जवाब दिया—“शहर का कोई भी ऐसा ताँगेवाला नहीं, जो कम-से कम १५ की मजदूरी न करता हो । फिर, मरे हुए घोड़ों से । आपके घोड़े घोड़े होंगे । मेरे खयाल से आमदनी होगी १८ की रोज़ाना । अब खर्चा निकाल दीजिए ।”

“अजी, क्यों लनतरानी हाँकते हो !” नवाब साहब ने कहा ।

“नहीं-नहीं, झूठ नहीं कहता है नजमू ।” हफीज़ू ने कहा—“सवारियाँ भी बैठती हैं ज्यादातर अच्छे जानवर को ही देखकर ।”

“फिर भी १८ रोज़ाना बहुत होते हैं हफीज़ू ।”

“यह आप क्या कहते हैं । पैदा करके न दिखा दूँ, तो मेरा नाम नहीं ।”

“अच्छा-अच्छा, ठहरो ।” नवाब साहब ने कहा—“मैं

ताँगे-घोड़े का तो इंतजाम कर दूँ, और रोज़ाना १५ सिर्फ़ हमें देते रहो तुम लोग। क्यों, इस बात पर राज़ी हो ?”

सब लोगों ने एक स्वर से कहा—“हाँ, हम राज़ी हैं। १५ रोज़ाना हमसे लें आप।”

मंडली की बैठक बरखास्त हो गई।

नवाब साहब ने चार ताँगे बनने के ज़िये ऑर्डर दे दिया, और बढ़िया आस्ट्रेलियन घोड़े ख़रीदने की फ़िक्र में पड़ गए।

सुना गया कि बर्दवान में घोड़ों का अच्छा बाज़ार लगता है, अतः वह करीमू को साथ लेकर ट्रेन पर सवार हो गए, और बर्दवान पहुँचे।

बर्दवान के बाज़ार में उन्होंने देखा, सचमुच एक-से-एक बढ़िया आस्ट्रेलियन घोड़े वहाँ फ़रोख्त होने के लिये आए हैं। नवाब साहब ने पसंद करके चार घोड़े (४०००) में ख़रीदे, जो देखने में निहायत ही तंदुरुस्त, पैर-पीठ के सुडौल और ऊँची कनौती के थे।

घोड़ों की ख़रीदारी करने के बाद नवाब साहब मक़ान आए, तो उन्हें सुनाई पड़ा कि परसों नजमा नूरु के साथ मोटर पर सैर करने गई, और अब तक वापस नहीं आई! यह ख़बर सुनते ही सन्नाटे में आ गए।

सोचने लगे—“बड़ी बदनामी की बात है। शहर में मेरी इज्ज़त थोड़ी नहीं है, हर छोटा-बड़ा मुझे जानता है। मैं अब किसी को क्या मुँह दिखाऊँगा। नजमा को भी क्या सूझी कि

एक नीच क्रौम, गरीब, अनपढ़ के साथ भगी। यह भी हो सकता है कि नूरु ही अपनी बदमाशी से ज़बरदस्ती उसे ले भागा हो। वह तो बेचारो औरत जात ठहरी, कर भी क्या सकती थी।”

इन्हीं खयालों में डूबे हुए वह अंदर हवेली में पहुँचकर अपनी चीजें सँभालने लग। क्या देखते हैं कि सेक दूट चुका है ! सिर पकड़कर बैठ रहे। उस वक़्त ऐमा मालूम होता था कि किसी हाशियार कारीगर ने नवाब साहब की शकल में पत्थर की मूर्ति तराशकर रख दी हो।

ठीक इसी वक़्त बेगम साहबा ने उनके कमरे में पैर रक्खा। आहत पाते ही नवाब साहब चौंक पड़े। बोले—“देखी नजमा की करतूत ! मेरी सेक की रकम भी उड़ा ले गई वह।”

“सेक में कुछ था ?”

“अरे, उसमें १०००) नक़द था !” नवाब साहब लंबी साँस खींचकर बोले—“मैंने उसका शादी के लिये जो ज़ेवर बनवाकर रक्खे थे, वे सब भी उसी में तो थे !”

“तब तो बड़ा राज़ब हुआ नवाब साहब !” बेगम ने आँखें चमकाकर कहा—“मगर आपने भी तो राज़ब किया कि पूरे १६ साल की हो गई, मगर उसकी शादी कर देने की परवा आज तक न की।”

नवाब साहब खामोश हो गए।

नूरु तेज रफ्तार से कानपुर-रोड पर मोटर उड़ा ले गया। जब दोनो कानपुर पहुँच गए, तो नजमा ने कार बेच डालने की सलाह दी। चार-छ रोज़ में उसका खरीदार मिल गया, और कार बेच डाली गई। पास में पैसा तो काफी था ही, बड़े मजे में दोनो की गुज़र होने लगी।

नजमा और नूरु बहुत पोशीदा तौर पर रहने लगे। उन्हें कानपुर में करीब-करीब तीन महीने गुज़र गए। नूरु ने अब तक कहीं नौकरी भी न की। दोनो ने यह समझलिया कि शायद नवाब साहब ने अपनी बदनामी ज़्यादा फैलाने के डर से थाने में रिपोर्ट नहीं कराई है, क्योंकि पुलिस भी उनसे कुछ न बोलती थी।

नजमा और नूरु, दोनो ही के गले बहुत सुरीले थे। दोनो को गाने का शौक था। नजमा तो अपने गाने से मुर्दों में भी जान डाल देती थी। रूप भी मनोहर था उसका।

उन दिनों कानपुर में एक थिएटर-कंपनी आई हुई थी। नजमा और नूरु, दोनो ही जब-तब उसके खेल देखने जाया करते थे। कंपनी के मैनेजर से भी धीरे-धीरे उनकी जान-पहचान हो गई।

एक दिन नजमा ने कंपनी में ऐक्ट्रेस बनने का प्रस्ताव

मैनेजर के सामने पेश किया। मैनेजर ने नजमा को रूप-रंग के कारण पसंद कर लिया। साथ ही जब उसने गाना भी सुना, तो बहुत ही खुश हुआ।

नजमा और नूरु, दोनों ही थिएटर में दाखिल हो गए। अब उन्हें आमोद-प्रमोद के साथ-साथ आमदनी का भी खासा सहारा हो गया, और उनके दिन बड़े चैन से कटने लगे।

नजमा ने मकान से भागते वक्त, सौतेली मा के मशविरे से अपना फरजी नाम 'लीला' रख लिया था, इसलिये उसने एक खत उनको भी लिख दिया, और लखनऊ के हाल पूछे।

नजमा का खत लखनऊ आया। नज्जीरा ने खत ले जाकर नई बेगम को दिया। हालाँकि वह लिफाफा पेशतर नवाब साहब के हाथ में ही पहुँचा था, मगर उस पर भेजने-वाले का नाम 'लीला' लिखा हुआ देखकर उन्हें किमी शक-शुबहा की गुंजायश ही न रही थी।

दोनों तरफ से खत बराबर आते-जाते रहे। दोनों को इधर-उधर के हाल खूब मिलते रहे।

नजमा और नूरु, दोनों ही कुछ दिनों बाद बंबई चले गए। नजमा ने अपने जाने की इत्तिला भी बेगम साहबा को दे दी।

नवाब लटकन के चारों घोड़े भी तब तक बर्दवान से आ गए थे। घोड़े क्या थे, पूरा तमाशा थे। सैकड़ों आदमी उन्हें देखने आते थे। चारों तरफ नवाब साहब के घोड़ों का ही तज्जक़िरा था। नवाब साहब तारीफ़ें सुन-सुनकर फूले न समाते थे।

इधर चारों ताँगे भी बनकर तैयार हो गए। वह भी बनावट और सफ़ाई में खासे थे। कारीगरों ने उन्हें बेहतर-से-बेहतर बनाने में कोई कसर न छोड़ी थी।

शाम के वक्त, नवाब साहब अपने दोस्तों के साथ ताँगे पर बैठे, और एक घोड़ा जोता गया। कोचवानी में रक्खा गया करीमू। अब ताँगा चला। अभी ज्यादा-से-ज्यादा ५० क़दम ही बढ़ा होगा कि घोड़ा खड़ा हो गया। करीमू ने ४-६ चाबुक खूब कसकर जमाए। खैर, घोड़ा कुछ आगे बढ़ा। मगर वही बात—फिर ४०-५० क़दम चलने के बाद घोड़ा ठप हो गया। मारने-पीटने पर फिर चला। ऐसा जान पड़ने लगा कि घोड़े को एक जिद-सी पड़ गई है कि देखना है, मुझे कितना पीटा जाता है, मैं तो कुछ क़ुर चलाकर खड़ा ही हो जाऊँगा। करीमू भी घोड़े की इस हरकत से मन्सूब

उठा, और उसने मारते घोड़े की नाकों दम कर दिया, मगर घोड़े ने अपनी हरकत न छोड़ी।

नवाब साहब को घोड़े की बदौलत जो शर्मिंदगी उठानी पड़ी, उसका कहना ही क्या ! लोग खूब आवाजा कसने लगे। कोई कहता—“वाकई हजार रुपए का है।” तो कोई कहता—“सचमुच उसने क्रीमत अदा कर दी।” कोई कहता—“अगर उसमें ऐसा जौहर न होता, तो क्या हजार रुपए मुफ्त के थे, जो लुटाए जाते !” शरज कि नवाब साहब सख्त परेशान थे।

उन्होंने करीमू से कहा—“इस साले को ले जाओ, और दूसरे को लाकर जोतो।”

करीमू ने दूसरा घोड़ा लाकर जोता, मगर वह भी पहले का सगा भाई ही निकला। करीमू पीटते-पीटते सख्त परेशान हो गया। आखिरकार तीसरा और फिर चौथा घोड़ा जोता गया, मगर नहीं मालूम कि बर्दवान से चलते वक्त, घोड़ों ने बाहम कुछ मशविरा कर लिया था कि जो एकरविश पकड़े, दूसरे को भी वही अफ़्तियार करनी चाहिए।

नवाब साहब दोस्तों के साथ वापस मकान चले आए। जी में सोचने लगे, यह तो ४००० मिट्टी में मिल गए। नहीं मालूम, कुदरत को क्या मंजूर है कि घाटे पर घाटा होता जा रहा है। अब में १००० गया, नजमा ने दो-ढाई हजार पर पानी फेर दिया। इधर यह हाल हुआ। लगान

और दावतों की रकम की वसूलयाबी बाकी पड़ी रही। अब क्या होगा? कैसे गुजर होगी? नवाब साहब इसी उलझन में आकर एक कुर्सी पर बैठ गए।

“क्या सोच रहे हैं आप!” सगीरहुसैन ने पूछा।

“यही कि मेरा हर काम उलटा होता जा रहा है।”

“यह तो वक्त है, कभी कैसा, कभी कैसा।”

“अरे भाई, सोचा था कि कुछ न होगा, तो तौंगे ही किराए पर चलाऊँगा, इसी से कुछ आमदनी होने लगेगी। वह मनसूबा भी सब खाक में मिल गया।” नवाब साहब ने लंबी साँस लेकर कहा—“देखने में तो कितने तगड़े और खूबसूरत हैं घोड़े, मगर देखीं करतूतें उनकी आपने?”

“नवाब साहब! घोड़ों में कोई खराबी नहीं है, तो सिर्फ उनकी यह बुरी आदत ही है। मेरे खयाल से ये घोड़े फौजी डेयरी फारम के हैं। इनका तो बस यही काम है कि १०-२० कदम चलें, और रुक जायें।”

“वहाँ ये किस काम में लाए जाते हैं?”

“सिर्फ दूध बेचने की गाड़ी में जोते जाते हैं।” सगीर-हुसैन ने एक तजुर्वेकार की सूरत में कहा—“दूध की गाड़ी चली, एक बैरक के सामने ठहरी। वहाँ दूध दिया, और चल दी। फिर कुछ दूर चलकर दूसरे बैरक के सामने खड़ी हो गई। वहाँ दूध दिया गया। इस तरह इन घोड़ों की ऐसी आदत बन गई। अब किसी तरह इनकी आदत बदले, तो काम चले।”

“मुझे क्या खबर कि ये साले इतने निकम्मे निकलेंगे।” नवाब साहब ने हाथ मलते हुए कहा—“मैंने तो इन्हें तगड़ा और तंदुरुस्त समझकर खरीदा था, यह सुनकर कि फौजी घोड़े हैं।”

“खैर, जो हुआ, सो हुआ। अब इन्हें बेच डालें आप।”

“यहाँ इन्हें मोल लेगा ही कौन ? सारे शहर में तो इनकी हरकतें खुल ही गई।”

“यहाँ न सही, बाहर भेजकर बिकवा डालिए।”

“कहाँ भेजूँ ?”

“मैंने सुना है, जिला फर्रुखाबाद में एक मेला शाह मदार का लगता है। वहाँ घोड़ों का बड़ा बाजार भी लगता है। मेरे खयाल से इन्हें वहीं भेजें आप।”

“अच्छा खैर, देखा जायगा। मगर घाटा उठाना पड़ेगा।”

“अब आप घाटे को न सोचें, नहीं तो इनको रातिब बेते-बेते और भी परेशानी उठानी पड़ेगी। जो दाम खड़े हों, खड़े कर लिए जायँ।”

“अच्छा, यही करूँगा भाई।” नवाब साहब ने आबुर्दगी के साथ कहा।

अगले रोज़ बड़ी बेगम ने मायके से वापस आते ही पूछा—“नजमा नहीं मालूम होती घर में, कहीं बाहर गई है क्या ?”

‘क्या बताऊँ तुम्हें नजमा के मुतअल्लिक ।’ नवाब साहब ने शर्मिंदगी के साथ कहा—“उसने तो हम लोगों की नाक कटवा दी ।” .

“आखिर क्या किया उसने ?” बेगम ने तमककर कहा—
“कुछ मुँह से भी तो कहो ।”

“भाग गई ।”

“भाग गई ?”

“हाँ ।”

“किसके साथ ?”

“नूरु के ।”

“नूरु कौन ?”

“ड्राइवर ।”

“किसका ?”

“अपना ही ।”

“कहाँ मकान था उसका ?”

“यही का रहनेवाला था वह ।”

“तब भागकर कहाँ चली गई ?”

“पता नहीं, कहाँ गई !”

“नूरु अपने घर पर है ?”

“वह भी गायब है ।”

“अच्छा, पूरी बात साफ - साफ बताइए, हुआ क्या ?”

“बात यह थी कि नूरु अपने यहाँ ड्राइवर था । उस का जवान और शकील था । मैं बर्दवान गया हुआ था, घोड़े खरीदने । नजमा नूरु के साथ कार पर बैठकर, मेरी सेफ का सारा रुपया और जेवर लेकर चंपत हो गई ।”

“तो गोया कार भी नहीं है अब घर में !”

“नहीं ।”

“तुमने पुलिस में रिपोर्ट दी ?”

“नहीं ।”

“आखिर क्यों ?”

“बदनामी के खौफ से ।”

“अच्छा, तो घाटा कितना हुआ नजमा की बचौलत ?”

“यही कोई ५००० का । मगर यही घाटा क्या, और भी तो लंबेघाटे रहे हैं इस साल ।”

“कैसे ?”

“चार-पाँच हजार तो दावतों में खर्च हुए, चंदों में भी

कम-से-कम दो-ढाई हजार खर्च हुए। चार-पाँच हजार तौंगे और घोड़े ले डूबे। नजमा ने इधर पाँच हजार पर पानी फेर दिया, और उधर तुम्हारे नालायक फहीम ने बटवारे का दावा दायर कर दिया। सारा साल घाटे में ही गुजरा। लगान की आमद बंद होने से मालगुजारी भी घर से ही देनी पड़ी।”

“जानते हो, यह सब क्यों हुआ?” बेगम ने ज़रा मुँह बिगाड़कर कहा—“सिर्फ तुम्हारे आमाल तुम्हें पेरने लगे।”

“मेरे आमाल?”

“हाँ, जनाब, आपके आमाल।”

“मैं क्या बुरा करता हूँ?”

“नजमा तुम्हारी लापरवाही से ही भाग गई।”

“मैंने लापरवाही की? यह तो ग़लत कहती हो तुम।”

“हरगिज़ नहीं। अगर तुम परवा करते, तो कभी न भागती। क्या वह शादी करने लायक हो नहीं गई थी? पूरे १६ साल की थी।”

“नहीं-नहीं, ऐसा न कहो। मैंने इस साल उसकी शादी करने के ही इरादे से कुछ ज़ेवर भी बनवाए थे। कमबख्त उन्हें भी ले गई।”

“मैं और बात कहती हूँ। किसकी लड़कियाँ हैं, जो १६ साल तक घर में बैठी रहती हैं? १५-१६ साल की हुई कि शादी कर दी गई।”

“तो मैंने कब कहा कि उसकी शादी न हो ?”

“मैं तो यही कहूँगी कि तुमने उसकी शादी करने की फिक्र की ही नहीं। हमेशा अपने ही रंग में रँगे रहे। फिक्र रही, तो साहब लोगों की दावतों की, खिताब पाने की, नफ़सपरस्ती की। एक बात हो, तो कहूँ। तुमने अपने आमालों से सब कुछ चौपट कर दिया।”

“खैर, बहस करके फ़ायदा क्या निकलेगा ? ज्यादा बात न बढ़ाओ, ख़ामोश हो जाओ।”

“अजी, ख़ामोश कैसे हो जाऊँ।” बेगम ने आँखें बिगाड़ते हुए कहा—“मेरे दिल में आग जलती है। आखिर अब घर-गिरस्ती कैसे चलेगी ? यह भी कुछ सोचा है आपने ?”

“भाड़ में जाय घर-गिरस्ती !” नवाब साहब ने गुस्से से कहा, और बात बढ़ने के डर से उठे, और बाहर चले आए।

लखनऊ की तहसील मलीहाबाद की देहात में एक साहब रहते थे मुहम्मद साबिरअली। अच्छे रईस थे, परमात्मा ने उन्हें धन-दौलत भी भरपूर दे रखी थी। किसी बात की कमी न थी; अगर थी, तो केवल औलाद की। वह लावारिस थे। उनके मरने के बाद उनकी जायदाद का भोगनेवाला कोई न था। यही चिंता उन्हें हरदम सताए रहती थी।

उन्होंने बहुत कुछ सोच-विचार के बाद अपने भानजे अब्बासअली को गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बना लिया। धीरे-धीरे बक़्त गुज़रने लगा। समय का गति भी बड़ी प्रबल है। मुहम्मद साबिरअली की बीबी हामला हुई, और ठीक नौ महीने बाद एक सुंदर बालक का जन्म हुआ।

माता-पिता ने उस बालक का नाम मुहम्मद आशिकअली रखवा। जब तक आशिकअली बारह साल का हुआ, तब तक उसके माता-पिता दोनों ही संसार से चल बसे।

अब्बासअली चूँकि गोद लिया गया था, और वह अपने को उत्तराधिकारी भी समझता था, इस कारण उसने सारी जायदाद पर अपना क़ब्ज़ा करना चाहा। इधर मुहम्मद आशिकअली चूँकि उनका औरस पुत्र था, फिर भला वह जायदाद पर अपना जायज़ हक़ क्यों न समझता। बालिशों

होने पर उसके मामू नाजिमअली ने उसकी मदद की, और अब दोनों फरीकों अर्थात् मुहम्मद आशिकअली और अब्बासअली में झगड़ा पैदा हो गया।

अब्बासअली अपनी मदद के लिये नवाब लटकन साहब के पास लखनऊ आया। उसने सारा माजरा सुनाया, और प्रार्थना की कि आप मेरी इस समय मदद करें। नवाब साहब कुछ देर सोचने के बाद बोले—“तुम्हारे इस मामले में काफी कोशिश करनी होगी भाई अब्बासअली! और रुपया भी काफी खर्च होगा। बोलो, कितना रुपया लगा सकोगे?”

“रुपय के नाम से मेरे पास फूटी कौड़ी नहीं है नवाब साहब।”

“तो इसके मानी यह हैं कि रुपया सारा-का-सारा खर्च करूँ मैं?”

“अगर मेरे पास रुपया ही होता, तो मैं मारा-मारा क्यों फिरता।”

“अच्छा, समझ लिया। मगर यह भी तो सोचो कि अगर रुपया मैंने लगा दिया, और अल्लाह के फज़ल से कामयाबी भी हासिल हो गई, तो मुझे उसका एवज क्या मिलेगा?”

“अरे, इसके लिये आप क्या कहते हैं। यह तो खुली हुई बात है। मैं और आप रियासत के बाहम मसाबी हिस्सेदार होंगे।”

“अगर तुम इस बात पर दिल से राजी हो, तो मैं तैयार हूँ।” नवाब साहब ने बड़ी दिलजमई और खुशदिली के साथ कहा—“मगर तुमको इस बात का इक्करारनामा लिखना पड़ेगा।”

“मैं बसरो चश्म तैयार हूँ इक्करारनामा लिखने को।” अब्बासअली ने मुसकराकर कहा—“आप जब चाहें, तब लिखा लें।”

“अच्छी बात है, तो मैं हर तरह तुम्हारी मदद कर सकूँगा। रही इक्करारनामे की बात, सो आज तो इतवार है। कल कचहरी खुलेगी। बस, कल लिखा-पढ़ी हो जायगी।”

“मैं तैयार हूँ। कल ठीक वक़्त पर आ जाऊँगा। अब जाता हूँ।”

“अच्छी बात है।”

अब्बासअली सलाम करके उठा, और चला गया।

नवाब साहब आधी रियासत पाने की खुशी में उठे, और ज़नानख़ाने में दाख़िल हुए। बेगम साहबा ने देखते ही कहा—“मेरे कान एक मुद्दत से सूने हैं, आपसे बारहा कहा, मगर आपने परवा आज तक न की। इससे तो यही अच्छा है कि मेरे पुराने रिंग जो टूटे पड़े हैं, उन्हें ही सँभलवा दें आप। मुझे तो औरतों में बैठते-उठते शर्म आती है।”

“अरे, तुम भी क्या इयरिंग की बात कहती हो।” नवाब साहब ने मुसकराते हुए कहा—“खुदा ने चाहा, तो अब वह दिन सामने आ रहा है कि तुम नीचे से ऊपर तक सोने से पीली हो जाओगी।”

“अरे, बहुत डींग न मारो। बुढ़े होने आए, मगर लन-तरानियाँ न गई।”

“ये लनतरानियाँ हैं ?” नवाब साहब ने शानदार लहजे में कहा—“बस, समझ लो, बहुत जल्द दिन पलटने-वाले हैं।”

“सच ?”

“बिलकुल सच।”

“कैसे यक़ीन करूँ मैं। उधर आठ-दस हजार का घाटा हो ही चुका था, इधर फ़हीम ने जायदाद का बटवारा करा लिया। तुम्हारे पास अब रहा ही क्या ?”

“सब कुछ सबने छीन लिया,” नवाब साहब ने हाथ नचाते हुए कहा—“तो क्या मेरी तक़दीर छीन ली किसी ने ?”

“तुम्हारी तक़दीर ने ही तो मियाँ, ये दिन दिखाए ! अब आगे चलकर शायद जहन्नुम दिखाए।” बेगम ने ज़रा मुँह बिगाड़कर कहा।

“अरे, तुम नहीं समझीं।” नवाब साहब बोले—“मेरी तक़दीर अब जाग रही है ! देखना, क्या से क्या हुआ जाता है।”

“कैसे ?”

“एक मुकदमा मेरे पास आया है। मैं उसकी पैरबी करूँगा, और मालामाल बन जाऊँगा।”

“किस तरह ? साफ़ साफ़ कहिए।”

नवाब साहब ने सारा माजरा कह सुनाया, और बताया—
“मैं सोलह आने कामयाब हूँगा। तब तुम एक इयरिंग कहती हो, चाहे जो कुछ बनवाना। फिर देखना, हम लोग एक नई दुनिया में ही पहुँच जायँगे। शान ही निराली होगी हम लोगों की। नई-नई कोठियाँ बनवाएँगे। बढ़िया कार रक्खेंगे। तरह-तरह का फ़रनिचर हमारी कोठियों में होगा। और हाँ, हो सका, तो एक कुशादा कोठी गोमती के किनारे भी बनाएँगे गर्मियों में रहने के लिये। भला सोचो न, हम लोगों की दुनिया उस वक्त, कैसी होगी।”

“खैर, देखो, तुम्हारी तकदीर जोर दे, तब।”

“अरे, कैसी बातें करती हो। तकदीर जोर देगी, और जरूर जोर देगी। अगर तकदीर जोर न मारती, तो यह मामला ही मेरे पास न आता। क्या शहर में और कोई रईस ही नहीं हैं। आखिर अब्बासखली मेरे पास ही क्यों आया ?”

“हाँ, यह तो बताइए, मुकदमा लड़ने के लिये इतना रुपया कहाँ से आएगा ?”

“उँह, रुपए की क्या फ़िक्र। घर में न सही, मेरे पास जायदाद तो है। बेच डालूँगा।”

“ऐसा न हो कि जायदाद भी जाय, और कामयाबी भी हाथ न आए ?”

“भला, ऐसा कहीं हो सकता है। मैंने मामले को खूब समझ लिया है।”

“खैर, यह तुम जानो।”

बेगम साहबा उठकर अपने खानगी कामों में लग गई।

नई बेगम उर्फ लेडी साहबा भी घर की रंगत खूब गहरी नज़र से देख रही थीं। उन्होंने अपने जी में कैसला किया कि नवाब साहब ने पूरे दो गाँव बेचकर मुक़दमेबाज़ी में लगा दिए हैं, अब उनके पास सिर्फ़ आधा गाँव ही बाकी रहा है। अगर मुक़दमे में हार गए, तब तो यह कौड़ी-कौड़ी को मुहताज हो जायेंगे। इधर यह होगा कि ज़रूरत पड़ने पर मेरे ज़ेवरों पर आ बनेगी। नहीं दूँगी, तो भगड़ा होगा। नजमा की मा के पास वैसे भी कुछ बढ़िया ज़ेवर नहीं हैं। इससे तो यही अच्छा है कि मैं भी अपने लिये कोई और रास्ता निकालूँ। यही सब सोचकर उन्होंने आवाज़ दी—
“नज़ीरअहमद ! क्या कर रहे हो ? ज़रा इधर आना।”

बावर्चाख़ाने से जवाब मिला—“अभी आया, ज़रा हाथ साफ़ कर लूँ।”

नज़ीर हाथ धोकर आ गया। बोला—“क्या हुक्म है सरकार ?”

“एक बात पूछूँ ?” नई बेगम साहबा ने ज़रा मुसकरा-हट के साथ कहा।

“पूछिए हुज़ूर !” नज़ीर ने भी मुसकराकर जवाब दिया।

“हमारे घर की हालत तो देखते ही हो ?”

“जी हाँ।”

“अब यहाँ तुम्हारे खयाल से, कब तक मेरी गुजर होगी?”

“ज़रा मुश्किल मालूम होता है।”

“तब मुझे क्या करना चाहिए?”

“आपने क्या सोचा है?”

“मैं यही तो सोचती हूँ कि यहाँ अब मुझे कुछ ही दिनों में चम्दा और लज़ीज़ खाना मुयस्सर न होगा। न अच्छा कपड़ा ही नसीब होगा। बहुत मुमकिन है कि मेरे ज़ेवरों पर भी आ बने।”

“आपने अपनी पूँजी भी तो कुछ बचा ही रखी होगी?”
नज़ीर ने पूछा।

“तुमसे क्या छिपा है नज़ीर! संदूकची तो तुम खुद ही खोला करते हो।”

“मैं कोई आपकी तलाशी लेता हूँ?”

“न सही, तो समझ लो, इस वक्त, मेरे पास ५,००० के करीब होंगे।”

“और इनके अलावा ज़ेवर।”

“हाँ।”

“तब मैं बताऊँ? आप बुरा तो न मानेंगी?”

“यह तुम क्या कहते हो। कभी तुम्हारी बात को बुरा माना मैंने? कह दो।”

“तो नजमा का तरीका अखितयार करो, अगर मुनासिब समझो, तो।”

“ठीक, यही बात मैं भी सोच रही हूँ।”

“मगर एक बात आपको करनी होगी।”

“वह क्या?”

“वह भी साथ ही चलेगी।”

“हाँ-हाँ, यह मैं पहले ही सोच चुकी हूँ। वह बेचारी मुझसे कई बार रो-रोकर कह चुकी है। वह नवाब साहब के साथ रहने को जी से राजी नहीं है। मगर करे, तो क्या करे। मजबूर है। तुम्हारी सुसराल में भी तो कोई नहीं रहा कि जो वह वहीं चली जाती। उसे जरूर साथ ले जाऊँगी मैं।”

“खैर, ठीक है। तो चलोगी कैसे?”

“यही मौक़ा तो निकालना है, और निकालना पड़ेगा तुम्हें।”

“मैं क्या निकालूँगा मौक़ा?”

“बताऊँगी तुम्हें वक्त, आने पर। अब जाओ, अपना काम करो।”

“हाँ, ख़ूब याद आया। आज आपका एक ख़त बंबई से आया है। मेरी जेब ही में पड़ा रह गया। यह लीजिए।”

बेगम साहबा को एक लिफ़ाफ़ा देकर नज़ीर कमरे से बाहर निकल गया।

पिछले जमाने में एक हुए हैं नवाब सादिक़अली बेग। उन्होंने अपने रहने के लिये एक कोठी बनवाई थी। कोठी क्या थी, पूरा तिलस्मखाना था। उसकी बारहदरी में जाइए, तो वहाँ एक बड़ी-सी परी की मूर्त खड़ी मिलती थी, जो ऐसी कारीगरी से बनाई गई थी कि एक पेंच के सहारे एक गज्ज ऊपर उठकर अपने नीचे के तहखाने में जाने का रास्ता खोल देती थी। आप बहुत इतमीनान से सीढ़ियों से नीचे उतरकर तहखाने में पहुँच सकते थे। बारहदरी के पास ही के कमरे में एक बड़ी-सी अलमारी दीवार में लगी थी। उसे खोलने से अच्छी-खासी, तीन खानोंवाली अलमारी दिखाई पड़ती थी। मगर उसके नीचेवाले खाने में अगर कोई चीज़ न रक्खी जाय, तो वहाँ ऐसा खटका लगा हुआ था कि पल्ला एक तरफ़ को हटकर नीचे की तरफ़ जाने के लिये सीढ़ियाँ खोल देता था। इन सीढ़ियों पर से होकर कोठी के बिलकुल पीछे, एक चोर दरवाज़े पर पहुँचकर, कोठी से बाहर निकलने का रास्ता मिलता था। यह इसीलिये बनाया गया था कि अगर किसी मौक़े पर कोई ग़नीम हमला करके कोठी में आ जाय, तो बड़ी आसानी से रहनेवाले अपनी जान बचा सकते थे। इसी प्रकार और भी कई ऐसे ही

पेचीदा रास्ते कोठी में थे । कोई किसी कोठरी में निकलता था, कोई किसी छोटे-से मकान के घेरे में । कोई कहीं, कोई कहीं । गरज कि यह पुरानी कोठी अजीबो गरीब वज्जा-क़ता की थी । अलावा हमके, लोगों का खयाल था कि इस कोठी में करोड़ों अशर्कियाँ और जवा-हिरात दफ़न हैं ।

नवाब लटकन साहब भी दो-चार बार इस कोठी की सैर कर चुके थे । चूँकि बुलंद खयाल के आदमी थे, इस वजह से उनके जी में भी कभी-कभी आता था कि काश हमारे कब्ज़े में भी ऐसी ही कोठी होती ।

इस वक्त, इस कोठी के जो मालिक थे, उनका ज़माना बिगड़ा हुआ था । रियासत के नाम से एक चम्पा ज़मीन भी न थी उनके पास । कौड़ी-कौड़ी की मुहताज थे । बड़ी मुश्किल से गुज़र होती थी । रहने को तो उनका दूसरा मकान था ही, इसलिये उन लोगों ने सोचा कि लाओ, इस तिलस्मख़ाना को बेच ही डालें । रक़म ख़ासी हाथ लग जायगी । इसी खयाल से उन्होंने कोठी पर लॉटरी डालने का फैसला किया, क्योंकि एकमुश्त क़ीमत देनेवाला कोई नज़र न आता था ।

लॉटरी एक लाख रुपए की डालने का इरादा किया गया, और टिकट बनाए जाने लगे एक-एक हजार रुपए के ।

शहर में लॉटरी पड़ने की ख़बर ख़ूब गर्म हो रही थी । इस ख़बर को सुनकर करीमू भागता हुआ नवाब लटकन के पास

आया, और बोला—“कुछ आपने भी सुना ! लॉटरी पड़ रही है तिलस्मखाने पर !”

“क्यों बेकार बहकी-बहकी बातें कर रहे हो करीमू ! भूठ कह दिया होगा किसी ने ।”

“नहीं जनाब, भूठ कैसे ?” करीमू ने जोर देते हुए कहा—
“मैं अभी-अभी तो बाज़ार में देखता आया हूँ । लोग टिकट बेच रहे हैं ।”

“सच ?”

“हुज़ूर, बिलकुल सच ।”

“कितने को लॉटरी पड़ रही है ? यह भी कुछ सुना ?”

“हाँ साहब, मैं सारा पता ले आया हूँ । सौ टिकट पड़ेंगे, एक-एक हज़ार रुपए के ।”

“तब क्या मैं भी एक टिकट खरीद लूँ ?” नवाब साहब ने कहा ।

“हुज़ूर ! मेरी तो यही राय है ।”

इसी वक्त, राफ़ूर, नियाज़ू, नजमू भी आ गए । उन तीनों ने भी इस क्रिस्से को सुना । नवाब साहब ने उनसे भी मशविरा किया ।

“मेरे खयाल से अब जाग चुकी है आपकी तक़दीर । आपको एक टिकट ज़रूर खरीदना चाहिए ।” नजमू ने जवाब दिया ।

“कैसे मान लूँ कि मुकद्दर जग चुका है ?” नवाब साहब ने कुछ मुसकराते हुए कहा ।

“अरे, इसमें भी कोई शक रहा है अब !” नियाजू ने हाथ नचाते हुए जवाब दिया—“भला, सोचिए कि अगर यह न होता, तो जायदादी मुकदमा भी आपके हाथ न आता ।”

राफूर बोज उठा—“हुजूर ! अब मुकदमे का कैसा है रुख ?”

“मुकदमा बड़े अच्छे ढंग से चल रहा है ।” नवाब साहब ने शानदार लहजे में कहा—“और, अल्लाह ने चाहा, तो कामयाब हूँगा ।”

“तब भला सोचिए, रियासत थोड़ी मिलेगी आपको ।” राफूर ने कहा—“पूरे-पूरे १५ मुसल्लम गाँव हाथ लगेंगे । ऐसी जायदाद आपके पास पहले थी क्या ?”

“तभी तो हम लोगों का यह फ़ैसला है कि इन दिनों मुकद्दर जागा है आपको ।” नजमू ने कहा ।

“तो तुम्हारी सबकी राय है कि हज़ार रुया इस काम में भी लगा दूँ ?”

“हुजूर ! हम तो यही कहते हैं ।” नजमू ने जवाब दिया—“और, लॉटरी भी आपके नाम ही निकलेगी, इसमें भी शक नहीं ।”

“निकलेगी, और जरूर निकलेगी ।” राफूर ने कहा ।

“अच्छी बात है नजमू! हजार रुपया इस काम में भी लगा दो।”

गफूर बोला—“टिकट तो खरीब लें आप आज ही। इसके अलावा, अब आप घोड़ों का भी इंतजाम कर दें।”

“कैसा?” नवाब साहब ने माथे पर ज़रा बल देते हुए पूछा।

“यही कि शाह मदार का मेला ३-४ दिन में लगनेवाला है। घोड़े मकनपुर भेजे जायँ।”

“तब तो इसके मानी यह हुए कि घोड़े आज से कल तक यहाँ से भेज दिए जायँ?”

“हाँ हुज़ूर।”

“अच्छा बोलो, घोड़े लेकर कौन जायगा?”

“हम सब जाने को तैयार हैं, आप जिसे हुक्म दें।”

“अच्छा गफूर, तुम और करीमू चले जाओ।”

“तो क्या आप नहीं जायँगे?”

“मेरे जाने की ज़रूरत?”

“नहीं ऐसा ठीक नहीं। वहाँ कीमत का हिसाब-किताब कौन करेगा? आप हम लोगों के पीछे ट्रैन से चले आएँ।”

“हिसाब-किताब तुम्हीं दोनो कर लेना।”

“नहीं-नहीं, हम लोग वैसे तो आपकी खिदमत करने को हर वक्त तैयार हैं, मगर पैसे के मामले में तो आपको ही चलना पड़ेगा।”

नवाब साहब ने कुछ देर सोचने के बाद जवाब दिया—
“अच्छा, मैं भी यहाँ से चौथे रोज़ चल दूँगा। तुम दोनो
कल ही घोड़ों को लेकर रवाना हो जाओ।”

इसके बाद कमेटी बरखास्त हो गई। सब लोग उठकर
चले गए। नजमू लॉटरी का टिकट खरीदने की धुन में पड़
गया।

नवाब लटकन अब्बासअली का जायदादी मुकदमा हार गए। हालाँकि उन्होंने हाकिमों को डालियाँ पेश करने में भी पैसे को खूब पानी की तरह बहाया, वकील भी एक-से-एक बेहतर किए, मगर नतीजा बरखिलाफ ही निकला, और उनकी खयाली इमारत मसमसाकर बैठ गई। उनकी नई बेगम साहबा भी, जब नवाब साहब मकनपुर छोड़े बेचने की गरज से गए थे, नज्जीरा के साथ घर से रफू-चकर हो गईं। नवाब साहब ने हालाँकि वापस आकर उनका भी पता लगाने की भरसक कोशिश की, मगर पता न चला। आखिरकार मजबूर होकर बैठ रहे।

अब नवाब साहब सोचने लगे कि तकदीर ने ऐसा पलटा खाया है कि सब चौपट हो गया ! नजमा, बेगम, दोनों ही घर से भाग गईं, और साथ ही हज्जारों का मालो मत्ता भी ले उड़ी ! इधर जमींदारी का भी बटवारा फहीम ने करा लिया। रही-सही बेच-खोचकर मुकदमे में लगाई थी, वह भी साफ हो गई। लॉटरी में भी मुकद्दर ने साथ न दिया ! अब करें, तो क्या करें। उनका दिमाग चकर खाने लगा।

अब उन्हें रह-रहकर अब्बासअली पर भी क्रोध आने लगा कि अगर यह कमबख्त मेरे पास न आता, तो मैं इस

तरह कभी बरबाद न होता। मुझे क्या पड़ी थी कि मुक़दमे की आफ़त अपने सिर लेता। उस कमीने का क्या बिगड़ा ? मैं तो तबाह ही हो गया। और, अब भी मरदूद आता है, नज़रसानी का मशविरा देने।

नवाब साहब अपने ऐसे ही खयालों में डूबे हुए थे कि अब्बासअली आ गए। साहब-सलामत करने के बाद एक कुर्सी पर बैठते हुए बोले—“अब क्या इरादा है नवाब साहब !”

“काहे का ?” नवाब साहब ने बात टालते हुए कहा।

“यही मुक़दमे के मुतअल्लिक।”

“मेरा तो कोई इरादा नहीं।” नवाब साहब ने बेदिली से कहा।

“मेरी नाक़िस राय है कि नज़रसानी की दूरखवास्त दे दी जाय।”

“होगा क्या ? हाँ, कुछ रुपयों पर और फिर जायगा पानी।”

“नहीं, यह बात नहीं है नवाब साहब !” अब्बासअली ने अपनी लफ़्ज़ों पर जोर देते हुए कहा—“नतीजा ज़रूर निकलेगा। हाकिमों ने बहुत बड़ी बेईमानी की है, जानते हैं आप ?”

“अरे, बहुत डींग न मारो। मैं तुम्हारी बहौलत मिट्टी में मिल गया। अब जुदा के बास्ते मुफ़ पर रहम करो।”

“मैंने क्या मिट्टी में मिला दिया आपको ?” अब्बास-अली ने ज़रा गर्म होकर कहा—“आप खुद अपने लालच में फँसे । अगर आज कामयाब हो गए होते, तब ?”

‘खैर, जो कुछ मैंने किया, अच्छा या बुरा, मेरी तकदीर से हुआ । अब मैं नज़रसानी कराने से बाज़ा आया ।”

“देखिए, अब भी आप ग़लती पर हैं । मामले पर गौर कर लीजिए । कामयाबी होगी, और ज़रूर होगी ।”

“मैंने ख़ूब गौर कर लिया है ।” नवाब साहब ने निहायत रंजीदा होकर कहा—“अब मैं किसी तरह इस ग़ारतगरी में पड़ने को तैयार नहीं ।”

“खैर, यह आपकी मरजी रही, मगर आप भूल कर रहे हैं, यह ज़रूर कहूँगा मैं ।”

नवाब साहब झुँकलाकर कुर्सी से उठ खड़े हुए, और अंदर चले गए । अंदर पहुँचकर नौकर से बोले—“जाकर बाहर अब्बास से कह दो कि आइंदा से मेरे पास आने की तकलीफ़ न किया करें ।”

हुक़म पाकर नौकर बाहर आया, और उसने नवाब साहब का फ़रमान सुना दिया । अब्बास-अली भी झुँकलाकर उठे, और घर चल दिए ।

नवाब साहब का जीवन अब संकटमय था। कोई आमदनी का ज़रिया न बचा था। सिर्फ़ आधा गाँव उनके पास था। उसकी आमदनी बहुत कम थी। हालाँकि अब घर में पहले-जैसा खर्च न था। क्यों कि क़हीम, नजमा, नई बेगम, नज़ीरा और उसकी बीवी, ये सब-के-सब जा ही चुके थे, सिर्फ़ नवाब साहब, उनकी बूढ़ी मा, बीवी (बेगम) और पाँच बरस की छोटी बच्ची घर में थे। मगर आमदनी कम होने के सबब से इन सबकी भी गुज़र-बसर बाफ़रागत न होती थी। नवाब साहब इसी उधेड़-बुन में रात-दिन परेशान रहते थे।

एक रोज़ नवाब लटकन के हाथ में 'रोज़गार' मासिक पत्र का पुगना अंक आ गया। फ़ुरसत में होने की वजह से वह उसे पढ़ने लगे। पढ़ते-पढ़ते एक खास लेख पर उनकी नज़र पड़ी, जिसमें लिखा था कि तिज़ागत ही पैसा कमाने का सबसे अच्छा ज़रिया है। दुनिया में सभी जगह लोग बहुत-सी चीज़ों को बेकार समझकर छोड़ देते हैं, मगर दिमाग़वाले अगर चाहें, तो मिट्टी से भी सोना बना सकते हैं। बात सही थी। नवाब साहब सोचने लगे - वाकई, दिमाग़वाले सब कुछ कर सकते हैं। मैं भी

किसी बेकार चीज़ को इस्तेमाल लायक बनाकर उसकी त्तिजारत क्यों न शुरू करूँ ? मुमकिन है, कामयाबी मिले । फिर तो मालामाल होते देर न लगेगी । बस, इस खयाल के आते ही नवाब साहब मन-ही-मन दुनिया-भर की जानदार और बेजान बेकार चीज़ों की फ़ेहरिस्त बनाने लगे । मूँगफली के छिलकों से लेकर फलेंदे की गुठली तक और चींटियों से लेकर चूहे तक उनके खयाल दौड़ गए । चूहों की याद आते ही एक तजवीज़ उनके दिमाग में आने लगी । फिर क्या था—पूरी स्कीम बात-की-बात में बन गई । स्कीम बनते ही उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा, मानो दुनिया की सारी दौलत उनके रूबरू हाथ बाँधे खड़ी हुई है । वह इस नक्शे को सोच-समझकर मन-ही-मन खुश होने लगे । उन्होंने सोचा, मैं अपनी स्कीम में कामयाब ज़रूर हो जाऊँगा, और मेरी तंगदस्ती भी मजबूरन् मुझे छोड़कर भाग जायगी ।

वह यों ही खयाली पुलाव पका रहे थे कि अंदर से बेगम ने उन्हें बुलवाया । नवाब साहब अंदर पहुँचे । बेगम ने कहा—“मियाँ, घर में घी तो आज है नहीं । मैं कई दिनों से कह रही हूँ, ला दो । तेल ही से दाल बघार दूँ क्या ?”

“मेरे पास आज तो कुछ पैसे हैं नहीं ।” नवाब साहब अपना सिर खुजाते हुए बोले—“देखो, दो-एक दिन में घी भी मँगवा दूँगा । आज जैसे बने, वैसे काम निकाल लो ।”

“दो-चार रोख में कहाँ से आ जायगी दौलत ? घर का हाल तो दिनोंदिन खराब होता जा रहा है। तुम भले ही तेल से बघारी दाल खा लो, मैंने तो आज तक न खाई है, न खाई जायगी।”

“अरे, यह भी मौका है, निभा लो। मैंने एक स्कीम सोची है।”

“काहे की, घरेलू इंतजाम की ?”

“हाँ, तुम घरेलू इंतजाम की भी कह सकती हो। स्कीम है पैसा पैदा करने की।”

“यों तो तुम रोज़ ही खयाली पुलाव पकाते हो।” बेगम ने ताने-भरे लहजे में कहा।

“नहीं, तुम मज़ाक़ न समझना बेगम।”

“उँह, कौन माथा-पच्ची करे तुम्हारी बातों में। एक स्कीम बनाई बड़ी-सी जायदाद पाने की, वह पा गए ! दूसरी बनाई कोठी तिलस्मखाना पाने की, वह भी हाथ आ गई ! और, अब यह तीसरी स्कीम और बनी है। देखो, अल्लाह क्या रंग लाए ?”

“नहीं-तहीं, तुम अभी उसे समझी ही नहीं। अगर समझ लो, तो खुदा क्रसम फड़क जाओ। और सब कुछ फ़ेल हो गया, मगर यह स्कीम तो फ़ेल होने से रही। सुनो, मैंने सोचा है, एक रोज़गार.....”

बेगम ने बीच ही में सवाल कर दिया—“कैसा ?”

“सुनो, बताता तो हूँ। मैं करूँगा एक रोज़गार। आज तक

किसी की भी समझ में जो न आया होगा। बस, फिर देखना, हम घर बैठे-बैठे ही मजे उड़ाते हैं।”

“काहे का रोज़गार करने की सोची है ?”

“रोज़गार करूँगा, बस इससे ज्यादा मैं तुम्हें बताऊँगा नहीं। कैसा भी हो, मगर आज तक किसी ने ऐसा रोज़गार कभी किया नहीं।”

“तुम्हारी तरह कोई बेवकूफी का रोज़गार नहीं सोच सकता।” बेगम ने मुसकराते हुए कहा।

“लो, तुम तो मुझे बेवकूफ बनाने लगीं। जानती हो, यह रोज़गार समझ में आएगा, तो किसी गहरे दिमागवाले को ही।”

“अच्छा, तो बताइए, रोज़गार कैसा होगा ?”

“बस, यही न बताऊँगा। जब मैं करूँ, तब देख लेना।”

“बता भी दो, आखिर क्यों नहीं बताओगे ?”

“औरतों में कमज़रफ़ी का माहा ज्यादा होता है। तुम्हारे मुँह से बात निकली और लोगों के कान में पड़ी कि बस मेरी स्कीम बेकार हुई। तब क्या, और लोग भी वही रोज़गार करने लगेंगे।”

“अच्छा, मैं किसी से भी जिक्र न करूँगी।”

“नहीं-नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता। औरतें बहुत कमज़र्फ़ होती हैं। उनके पेट में बात रुकती ही नहीं। भला, सोचो तो, दिमागरेज़ी करूँ मैं, और उसका नफ़ा उठाएँ दूसरे।”

“अच्छा, अच्छा न कहो । भाइ में जाओ तुम, और तुम्हारी स्कीम ।” बेगम ने तुर्शरुई के साथ कहा ।

“तुम तो होने लगीं आपे से बाहर । तुम्हें आम खाने से गरज या पेड़ गिनने से ?”

“अच्छा, कह तो दिया, न बताओ । मगर कुछ करके दिखाओ, तभी जान लूँगी ।”

“जान ही नहीं लोगी, मेरी अकल की कायल हो जाओगी । अच्छा, खाने में क्या देर है ? मुझे भूख बहुत लगी है ।”

“देर कुछ नहीं है । आओ, तेल से बघारे लेती हूँ दाल ।”

नवाब साइब खाना खाने बैठ गए ।

कानपूर में, आठ महीने में ही, नजमा ने अपने यार नूरु के साथ जिंदगी की सारी बहार देख ली। उसके सुनहले खवाब सब धीरे-धीरे ख़ाक में मिल गए, और ख़ाक में मिल गया उसका रूप और यौवन, जिस पर वह इठलाया करती थी ! अब दोनो बात-बात में एक दूसरे से चिढ़ जाते और मार-पीट तक की नौबत आ जाती। पास के रुपए उड़ गए, ज़ेवर बिके, कपड़े बिके, और आखिरकार खाने-पहनने का भी ठिकाना न रहा। थिएटर की नौकरी पहले ही छूट चुकी थी। उस रोज़, सबेरे तड़के का गया हुआ नूरु बड़ी रात को घर लौटा, और नजमा से बोला—“ सुनती हो, कल सुबह हम लोग यहाँ से जा रहे हैं बाहर ।”

नजमा ने चौंककर पूछा—“क्या नौकरी लग गई कहीं ?”

“नहीं तो, मगर लग जाने की उम्मीद है। अमृतसर जाना होगा ।”

“मगर जाओगे कैसे ? रुपए किराए के ?”

“एक दोस्त से उधार ले आया हूँ साठ रुपए—बहुत हैं खर्च के लिये, क्यों न ?”

“ठीक है, कल सुबह चल देंगे हम लोग। मगर इस घर का किराया ? मकान-मालिक जाने कब देगा सामान लेकर ?”

“उँह, यहाँ सामान ही कौन-सा रक्खा है। छोड़ो ये चार-पाइयाँ और बर्तन खरीद लिए जायँगे।”

“जैसा कहो ?”

“मेरी तो यही राय है।”

अगले दिन दोनो-के-दोनो सुबह की ट्रेन से चल पड़े। तीसरे दिन सबेरे अमृतसर पहुँचकर एक मुसाफिरखाने में जाकर ठहरे। बाज़ार से पूरियाँ लाकर दोनो ने भर पेट खाई, फिर नूरु बाहर चला गया।

तीसरे पहर नूरु फिर वापस आया—उसके साथ एक मोटा-सा पंजाबी था। नजमा आड़ में हो गई। नूरु बोला—
“अजो, इधर आओ। इनसे क्या परदा, यह अपने ही हैं ?”

नजमा शर्माती हुई क़रीब आ खड़ी हुई।

पंजाबी बोला—“बैठ जाइए, आप तो खड़ी हैं।”

नजमा चुपचाप किनारे पड़ी हुई चारपाई पर बैठ गई।

पंजाबी ने बड़े ग़ौर से नजमा को देखा—उसके सिर से पैर तक नज़र डाली, फिर नूरु की तरफ़ देखकर कहने लगा—
“दोस्त ! ठीक है। तुम एक घंटे बाद होटल में मिलना।”

इसके बाद वह उठा, और कमरे से बाहर चला गया। नजमा ने पूछा—“कौन था यह शख्स ?”

नूरु ने जवाब दिया—“यही मुझे नौकरी दिला रहा है अपने दोस्त के कारख़ाने में।”

“मुझे तो कोई अच्छा आदमी नहीं जान पड़ता।”

“क्या खूब ! मुझ पर इतना मेहरबान है, तुम क्या जानो । क्या सूरत-शकल से ही अच्छा हो, तब उसे अच्छा कहा जाय !”

“नहीं, उसकी चाल-ढाल और बातचीत का ढंग ही बद-मार्श-जैसा जान पड़ा मुझे । ऐसे आदमियों से होशियार रहना चाहिए तुम्हें ।”

नूरु ने कुछ जवाब न दिया । वह बीड़ी सुलगाने लगा ।

एक घंटे बाद नूरु इंपीरियल होटल के सात नंबर कमरे में पहुँचा । वही पंजाबी कमरे में बैठा हुआ कुछ कागजात देख रहा था । नूरु को देखते ही बोला— ‘शाबाश दोस्त ! मैं तुम्हारा इंतज़ार कर ही रहा था ।’

इतना कहकर उसने कुरसी आगे बढ़ा दी । नूरु बैठ गया । पंजाबी ने खूँटी पर टँगे कुरते की जेब से नोटों की एक मोटी-गड़ी निकालकर नूरु के सामने मेज पर रख दी, और कहा—“गिन लो ।”

नूरु ने नोट गिने, और चौंककर बोला—“सिर्फ पंद्रह सौ ? तुमने कहा था, पसंद आने पर मैंहमाँगी रकम दूँगा ? यह तो बहुत कम है !”

पंजाबी हँसकर कहने लगा—“मियाँ ! पंद्रह सौ रुपए थोड़े नहीं होते । माल मुझे पसंद जरूर है, इससे ज्यादा कीमत का हर्गिज नहीं । निचोड़ हुए आम का सौदा कर रहा हूँ तुम पर तरस खाकर । अभी इसकी तैयारी, खिलाई-

पिलाई में दुगनी रकम गल जायगी, यह भी पता है तुम्हें ?”

नूरु ने कुछ और कइना बेकार समझकर नोटों की गड्डी जेब में रक्खी, और बोला—“तो शामवाली गाड़ी पर ही ठीक रहा न ?”

पंजाबी ने जवाब दिया—“हाँ, साढ़े छ पर छूटती है। सेकेंड क्लास का डिब्बा रिजर्व है मेरा उसी में आ जाना।”

नूरु वहाँ से चलकर मुसाफिरखाने में आया, और घबराहट जाहिर करते हुए बोला—“शजब हो गया नजमा ! पुलिस हमारे पीछे है ?”

“पुलिस ?” नजमा काँप उठी, और बोली—“अब क्या होगा ?”

“कुछ नहीं, चलो स्टेशन। मेरे दोस्त पेशावर जा रहे हैं, उनका सेकेंड क्लास का पूरा डिब्बा रिजर्व है, तुमको उनके साथ बिठा दूँगा, मैं थर्ड में अलग जा बैठूँगा। कोई पूछे, तो कह देना, मैं अब्दुलगनी की बीवी हूँ। मेरे उन पंजाबी दोस्त का नाम अब्दुलगनी है।”

“ऐसा कैसे कहूँगी ?”

अहमक हो खासी ! पुलिस से बचने के लिये रास्ते में ऐसा कहना पड़े, तो कह देना। कह देने से तुम कुछ उसकी बीबी थोड़े ही बनी जाती हो।”

उसी शाम को साढ़े छ बजे नजमा को पंजाबी के साथ

सेकेंड क्लास के डब्बे में नूरु ने बिठा दिया, और खुद बराबर के थर्ड क्लास में जा बैठा ।

गाड़ी ज़रा देर बाद चल पड़ी, मगर नूरु गया नहीं ।

वह दूसरी तरफ़ से वहीं अमृतसर के स्टेशन के प्लैटफ़ॉर्म पर उतर पड़ा । गाड़ी की तरफ़ देखकर वह मुस्कराया, बीड़ी सुलगाई, और जेब के भीतर रक्खी नोटों की गड्डी टटोलता हुआ स्टेशन के फाटक से बाहर निकल गया ।

नवाब लटकन ने बड़ी दौड़-धूप करके अपने गाँव से कुछ रुपया बसूत किया। जब उनके पास पैसा हो गया, तो शहर में दुगगी पिटा दी कि जो कोई चूहे पकड़कर लाएगा, उसे दो पैसे फ्री चूहे क्रीमत दी जायगी। साथ ही एक बड़ा-सा जालीदार कैदखाना चूहों के लिये बनवाया, जिसमें बड़े इतमीनान से कम-से-कम दस हजार चूहे बंद करके रखे जा सकें। कैदखाने के बनवाने में पूरे तीन सौ रुपए लग गए थे।

सारे शहर में धूम मची हुई थी कि आखिर नवाब लटकन साहब चूहे खरीदकर करेंगे क्या ? मगर लोगों ने चूहेदान लगाकर खूब चूहे पकड़े और नवाब साहब के पास ले गए। नवाब साहब ने फ्री चहा दो पैसे के हिसाब से दाम देकर चूहे ले लिए, और उन्हें कैदखाने में बंद कर दिया।

अब तो जोरों के साथ चूहों की खरीदारी चालू हो गई। जिसे देखिए, वही बाजार से एक चूहादान खरीदकर हाथ में लटकाए चला आ रहा है। लोहारों ने भी रात-दिन चूहेदान बनाना ही शुरू कर दिया, क्योंकि बाजार के दूकानदारों की रोज़ाना ही माँग बढ़ती जा रही थी। इस तरह नवाब साहब के इस नए रोज़गार के साथ ही और लोगों का रोज़गार भी खूब तरफ़ती पर पहुँचा।

नवाब साहब ने अपने कैदखाने में करीब-करीब छ हजार चूहे कैद कर लिए। उनको जिंदा रखने के लिये कम-से-कम बीस सेर नाज नवाब साहब को रोजाना देना पड़ रहा था। बेगम साहबा नवाब साहब के इस काम को महज बेकार समझती थीं। उन्हें यह रोजाना का बीस सेर नाज का खर्च भी बहुत अस्वरता था। आखिरकार एक दिन वह मजबूर होकर बोलीं—“आपका यह काम कुछ समझ में तो आता नहीं मेरी। आखिर आप इन सबका क्या करेंगे?”

“अरे, फिर तुमने वही पिछली बात छेड़ी! अब तो मेरी स्कीम चालू ही है, जो कुछ मैं करता हूँ, बस देखती जाओ।”

“देखती जाऊँ खाक! मेरे खयाल से कम-से-कम ३०० तो इन कंमबख्तों की खरीदारी में बिगड़ गया। ऊपर से बीस सेर नाज और घाते में जाता है रोज। कहाँ तक.....”

“तुम इस खर्च की फिक्र करती हो बेकार! यह भी तो देखना कि नफ़ा होता है इस खर्च का कै गुना।”

“आखिर वह नफ़ा होगा किस दिन? ये चूहे भी क्या लड़ाई पर भेजे जायँगे?”

“हाँ, जंग पर ही भेजे जायँगे?”

नवाब साहब ने देखा, बेगम की तेवरियाँ चढ़ी हुई

हैं। कहीं बिला वजह मगड़ा न खड़ा हो जाय, इस कारण घर से बाहर निकल आए।

चलकर एक सेठजी की दूकान पर पहुँचे। बोले—“सेठजी ! आदाब अर्ज है।”

सेठजी बोले—“आइए नवाब साहब ! आदाब। कहिए, आज किधर घूम पड़े ?”

“आपके ही पास तक आया हूँ। सोचा कि मुहत से मुलाकात न हुई, आज मुलाकात ही कर आऊँ चलकर।”

“कहिए, मिजाज तो अच्छा है आपका ?”

“हाँ, सब अल्लाह का फ़ज़ल है।” नवाब साहब ने एक कुरसी पर बैठते हुए कहा।

“बाल-बच्चे तो मजे में हैं आपके ?”

“हाँ, सब मजे में हैं, लड़का नालायक निकला, मैंने उसे घर से निकाल दिया।”

“अजी, इस बात का कहना ही क्या, लड़के होते हैं नालायक ही आजकल के। घर से निकाल दिया, बड़ा अच्छा किया आपने। अब ठोकरें खाते फिरेंगे बच्चू, तब ठिकाने आएगी अक़ल।”

“हाँ, यही सोचकर तो मैंने निकाल भी दिया उसे।”

“अमींदारी का क्या हाल है ? लगान तो चला नहीं होगा। परसाल से कहत है।”

“खैर, थोड़ा-बहुत चला ही लगान। न चलता, तो काम कैसे चलता।”

“और क्या हाल-चाल हैं?” सेठजी ने गिलौरीदान से पान निकालकर देते हुए कहा—“लीजिए, पान खाइए।”

“और कोई बात नहीं।” नवाब साहब मुँह में पान दाबते हुए बोले—“आजकल एक मुकदमे की लथेड़ में पड़ गया हूँ। उसी की फिक्र हर वक्त, खाए जा रही है बस।”

“कैसी?”

‘खर्चे-वर्चे की।’

“मुकदमे में खर्च होता ही है।”

“तो बस, आजकल रुपए की हो कमी है, उसी की फिक्र है, किसी तरह पैसा इकट्ठा किया जाय।”

“फिक्र जरूर करना चाहिए। मुकदमे का काम बगैर पैसे के नहीं चलता।” सेठजी ने संजीदगी के साथ कहा।

“मैंने तजवीज तो कर लिया है एक मेहरबान दोस्त को, मगर अभी उनसे कहा नहीं।”

कहना तो चाहिए आपको?”

“यही सोचता हूँ, जमाना बड़ा खराब है, शायद एतबार न करें।”

“नहीं-नहीं, यह कोई बात नहीं। दुनिया के सारे काम यों ही चलते हैं। कौन एतबार नहीं करता? सभी करते हैं। फिर आपके बारे में तो कहना ही क्या।”

“तो ख़ैर, मैंने उन मेहरबान दोस्तों में आप ही को मुंतख़िब किया है।” नवाब साहब ने सेठजी के चेहरे पर गहरी नज़र जमाकर कहा।

“ऐं ! मुझको !!” सेठजी अकबकाकर बोले—“मैं तो आपकी इमदाद करने लायक भी नहीं हूँ।”

“मुझे कुछ ज्यादा रुपयों की ज़रूरत नहीं है।” नवाब साहब ने बड़ी नमी से कहा—“सिर्फ़ एक हजार रुपया आप दे दीजिए।”

“अरे भाई कहाँ से लाऊँगा एक हजार रुपया ? यह भी तो सोचिए।”

“ऐसा न कहिए सेठजी ! आपके लिये यह रकम कौन मुश्किल है ? लाखों रुपयों का जिसका गल्ले का गोदाम हो, उसके लिये १,०००) कौन-सी बड़ी बात है ?”

“नहीं भाई ! मैं इंतज़ाम न कर सकूँगा।”

“देखिए, सेठजी ! आपका और मेरे वालिद साहब मरहूम का बड़ा गहरा दोस्ताना रहा है। लेन-देन भी रहा है। मैं उसी रिश्ते से आपको चचा मानता हूँ। इस वजह से सीधा आपके पास चला आया कि यहाँ मेरी ज़रूरत हल हो जायगी, और आप ऐसा फ़रमाते हैं !”

“जिनसे वास्ता था, वह उनके साथ गया। मेरा आपका वैसा वास्ता आज तक न कायम हुआ। मुझे माफ़ कीजिए।”

“तो एक बात है सेठजी !”

“क्या ?”

“मैंने कुछ चूहे भी पकड़ रखे हैं।” नवाब साहब ने आँखें बदलकर कहा—“जानते हैं आप कितने ? पूरे ६,८७५ चूहे। अगर आप सीधे तौर से राह पर न आए, तो याद रखिए, वे चूहे हैं और आपका गोदाम ! एक हल्ले में ही सकाया !”

सेठजी ने घबराकर कहा—“सच ?”

नवाब साहब ने जवाब दिया—“और नहीं तो क्या !”

“ऐसा न कीजिएगा नवाब साहब।” सेठजी ने खुशामदाना लहजे में कहा—“मैं दोनो-दुनिया कहीं का न रह जाऊँगा !”

“वह तो मुझे करना ही पड़ेगा।”

सेठजी ने कुछ सोचकर जवाब दिया—“अच्छा, खैर। अगर मैं रुपया दे दूँ आपको, तब तो कोई बखेड़ा न होगा ?”

“तब क्या मैंने भंग खाई है, जो पालतू चूहे छोड़ता फिलूँ।”

“अच्छा, कल शाम को तशरीक लाएँ आप। मैं रुपए का इंतजाम कर रखूँगा।”

“बेहतर है। कल शाम को सही।”

नवाब साहब उठकर अपने घर चले आए।

सेठजी ने पुलिस-स्टेशन (थाने) में जाकर रिपोर्ट लिखा दी कि नवाब लटकन ने अब खुली डकैती अखितयार की है, वह यों कि उन्होंने बहुत बड़ी तादाद चूड़ों की पाल रक्खी है । उन्होंने खुद अपनी ज़बान से मुफ्फसे कहा है कि मेरे पास ६,८७५ चूड़े हैं । धनी-मानी आदमी को धमकी देकर कहते हैं कि अगर तुम मुझे मेरा मुँहमाँगा रुपया न दोगे, तो मैं तुम्हारे घर में उन चूड़ों को छोड़ दूँगा । मुफ्फसे भी इसी तरह उन्होंने एक हजार रुपया माँगा है ।

थाने में रिपोर्ट लिख जाने के बाद एक थानेदार साहब नवाब लटकन के मकान पर पहुँचे ।

दिन के दस बजे का वक्त था । नवाब साहब बाहर बैठे हुए हुक्के का लुत्फ उठा रहे थे । उनके सामने धुएँ के बादल छाय हुए थे । इसी वक्त थानेदार साहब पहुँचे । साहब-सलामत हुई । नवाब साहब ने थानेदार को मुखातिब करते हुए कहा—“आज कैसे तशरीफ़ ले आए आप ? कहिए, खैर तो है ?”

थानेदार साहब कुरसी पर बैठते हुए बोले—“आपके ऊपर एक रिपोर्ट हुई है जनाब ! उसी की तफ़तीश में आया हूँ ।”

नवाब साहब ने हैरानगी के साथ पूछा—“मुझ पर ?”

“हाँ जनाब ।”

“कैसी ?”

“सुना गया है, आपने चूहे पाले हैं ?”

“कौन कहता है ?”

“सेठ गोपालदास ।”

नवाब साहब ने अकचकाकर कहा—“बिलकुल गलत, उसने बहका दिया ख्वामख्वाह आपको ।”

“फिर उसने ऐसी रिपोर्ट लिखाई क्यों ?”

“यह वह जाने । हाँ, इतना जरूर है कि वह अदावत मानता है मुझसे । लीजिए, पान खाइए ।” ख्वासदान से पान निकालकर नवाब साहब ने थानेदार साहब को देते हुए कहा ।

इतने में चूहों की चें-चें थानेदार साहब के कानों में पड़ी । वह बोले—“नवाब साहब ! आपके कमरे में कुछ आइट मिलती तो है चूहों की ?”

“भला, ऐसा कौन-सा मकान होगा ।” नवाब साहब ने ज़रा मुसकराकर कहा—“जिसमें चूहे न हों । मेरी तो नाक में दम है इन सालों से । जिस चीज़ को देखो कुतरे बैठे हैं ।”

“और, इस कमरे की तरफ़ से कुछ बदबू भी तो आ रही है ।”

“हाँ, आती है । अभी महसूस हुई थी मुझे भी । बिल्ली ने

एक चूहे को मारकर कमरे में ही डाल दिया। वह पड़े-पड़े सड़ गया। नौकर आ जाय, अभी साफ कराता हूँ कमरे को।”

नवाब साहब ने जेब से एक १०) वाला नोट निकालकर थानेदार साहब को देते हुए कहा—“लीजिए, पान खाने के लिये रख लीजिए।”

“आखिर क्यों?” थानेदार साहब ने नोट जेब में रखते हुए कहा।

“आपके तकलीफ करने के सिलह में कुछ तो होना ही चाहिए।”

“खैर, जैसी आपकी मरजी। मगर सेठ गोपालदास बड़ा बदमाश है। आपको बिला वजह ही जलील करना चाहा उस कमबख्त ने। मगर आप मेरी तरफ से इतमीनान रखें।”

“अरे साहब! इन सेठों की कुछ न पूछिए। यह सेठ बने कैसे? दूसरों को ठगकर ही तो बने। आपका ही तो भरोसा है मुझे।”

थानेदार साहब ने कुरसी से उठते हुए कहा—“अच्छा साहब, जाता हूँ। आदाब।”

थानेदार साहब चले गए।

सारा दिन गुज़र गया।

रात को ठीक बारह बजे नवाब साहब ने चूहों का क्रैद-खाना एक ठेले पर लदवाया, और नब्बन, करीमू को साथ लेकर सेठजी के गोदाम का रास्ता पकड़ा।

गोदाम उनके मकान से थोड़ी ही दूर पर था। गोदाम के फाटक पर एक सिपाही पहरा दे रहा था। जब नवाब साहब पहुँचे, तो करीमू ने सिपाही को पकड़कर एक तरफ कर दिया, और फाटक खोलकर चूहों के कैदखाने की खिड़की गोदाम की तरफ खोल दी। फिर ठेला वापस कर दिया।

सेठजी रोजाना ही रात के १२ बजे के बाद खाना खाने के आदो थे। वह जब खाना खाकर छुट्टी पाते थे, तभी गोदाम में ताला डलवाते थे। अभी दूकान पर ही थे कि चूहों की आफत की उन्हें खबर मिली। उठे, और फौरन् भागकर गोदाम में आए।

बहुतेरे चूहे उनके मकान में घुस गए थे। मुद्दत के भूखे थे बेचारे। जाते ही जिस चाँज को पाया, काटने लगे। बच्चे आराम से पड़े सो रहे थे। चूहों ने उन्हें भी काटा। बेचारे चीखने लगे। औरतें भी इस आफत से न बच सकीं।

सेठजी दौड़कर अंदर पहुँचे। देखा, हवेली में एक कोहराम मचा हुआ है। सब-के-सब सख्त परेशान हैं। अब भी हवेली के अंदर चूहों की धमाचौकड़ी मची हुई थी। पचासों इधर से उधर और उधर से इधर भागते फिर रहे थे। खैर। जब सेठजी गोदाम में आए, तां देखा, सैकड़ों चूहे गल्ले पर पिले हुए हैं। सख्त परेशानी में पड़ गए।

कुछ सोच-समझकर सेठजी सीधे भागे नवाब साहब के मकान की तरफ। नवाब साहब तो इस तक में थे ही।

रास्ते में ही मिल गए, बोले—“क्यों, क्यों, कहाँ भागे जा रहे हैं आप ?”

सेठजी ने घूमकर नवाब साहब की तरफ देखा, और गिड़गिड़ाकर बोले—‘ग़ज़ब किया आपने ! शाम को क्यों नहीं आए मेरे पास ? जब मैं आपसे कह चुका था ।’

खैर, मैं नहीं आया, न सही । मैंने ग़लती की, मगर अब आप लिखा दें यह भी रिपोर्ट कि नवाब ने मेरे घर में चूहे छोड़ दिए ।” नवाब साहब ने धमकाते हुए कहा—“अभी तो मैंने सिर्फ़ इतने ही छोड़े हैं, थोड़ी ही देर में चार हजार और आ रहे हैं ।”

सेठजी ने झुककर नवाब साहब के पैर पकड़ लिए, बोले—“ऐसा न कीजिए, मर जाऊँगा मैं ।”

“तो रुपए देते हैं आप ?”

“हाँ, ५०० दे सकूँगा । ज्यादा का इंतिज़ाम न हो सका ।”

“खैर, लाओ ५०० ही सही, बाक़ी का फिर इंतिज़ाम कर देना ।”

“अच्छा ।”

नवाब साहब सेठजी के साथ दूकान पर आए, और रुपया लेकर अपने घर चले गए ।

बेगम साहब बहुत ख़ुश हैं, नवाब साहब ने उन्हें रुपए लाकर दे दिए थे। सबेरे का बक्त था। बेगम से नवाब साहब ने कहा—“देखा मेरा रोज़गार ! है नफ़े का ?”

“हाँ, आज समझ में आई तुम्हारी स्कीम-” बेगम ने सुस्कराकर कहा—“मगर खुली डकैती है।”

“अरे, तुम नहीं जानती बेगम ! यह बड़पेटू सेठ इसी काबिल हैं। आखिर हम लोगों को ठगकर ही तो सारी रकम जमा की है इन्होंने।”

“ख़ैर, कुछ भी सही, मगर है डकैती ही।”

“हुआ करे, हमें इसकी क्या परवा ! मगर स्कीम हमारी है ठीक।”

“स्कीम बिलकुल ठीक है,” बेगम ने अपने सिर का डुबट्टा सँभालकर कहा—“मगर क्या आईदा भी चालू रहेगी ?”

“हाँ। इरादा तो यही है अभी।”

“चूहों का तो अब सफ़ाया हो चुका है ?”

“इसकी फ़िक्र ही क्या ? ख़रीदारी जारी हो जायगी। अब की बार बजाय आध आना के पूरा एक आना कीमत कर दूँगा, तब तो उम्मीद है, बहुत जल्द काफी तादाद में इकठ्ठे हो जायँगे।”

“तो अब की बार कौन-सा सेठ ताक रखता है आपने ?”

“यह कोई सोचने की बात है। उस वक्त, जो सामने पड़ गया। अच्छा, नाश्ता लाओ।”

नवाब साहब ने नाश्ता किया, और बाहर चले गए।

चूहों का खरीदारी जारी हो गई, और कीमत लगा दी गई एक आना की चूहा। अब तो कसरत से चूहे नवाब साहब के घर आने लगे।

अब की बार नवाब साहब ने चूहे खरीदे करीब बीस हजार, जो अपने क़ैदखाने में हर वक्त धमा-चौकड़ी मचाए रहते थे।

एक दिन दिल्ली से नवाब साहब की बहन बच्चों-समेत आ गईं। उन्हें आए हुए अभी दो-चार दिन ही गुजरे थे कि उनकी छोटी लड़की, जो अभी सिर्फ़ चार बरस की थी, चूहों के क़ैदखाने के पास पहुँची। उसने खेल-ही-खेल में उसकी खिड़की खोल दी। चूहे एकदम बाहर निकल पड़े। मुद्दत के भूखे चूहे लड़की पर एक साथ दूट पड़े। उसकी उँगलियाँ, होंठ, पाँव, पीठ गरज कि जहाँ चाहा, दाँतों से काटा। हजारों की तादाद में चूहे हवेली में दाखिल हो गए।

औरतें खाना पकाने की तैयारी में थीं। साग बग़ैरा काटा जा रहा था। चूहे जाकर तरकारियों पर ही नहीं, औरतों पर भी चढ़ गए, और ख़ूब काटने लगे। सारे घर में कोहराम मच गया ! जिधर नज़र जाती थी, सिवा चूहों के और कुछ न दिखाई देता था। यहाँ तक कि औरतों और बच्चों ने

मजबूर होकर रोते-चीखते घर ही खाली कर दिया, और पड़ोसियों के यहाँ जा बैठे ।

अब भूखे चूहे बड़ी आजादी के साथ सारे घर में घूमने लगे । जिस चीज को खाने लायक पाया, उसे खाया । न खानेवाली चीजों को भी काट-पीटकर बरबाद किया । कपड़े भी, जो टूटकों से बाहर फैले पड़े थे, खूब सत्यानास किए ।

नवाब साहब मकान पर मौजूद न थे । जब वह बहर से शाम को आए, तब उन्हें अपने घर की यह कैफियत मालूम हुई । बहुत परेशान हुए । हवेली के अंदर पहुँचकर देखा, चूहे अब तक घर में दौड़ लगा रहे थे ।

दो-तीन दिन तक नवाब साहब और औरतें-बच्चे मकान में न आ सके । जब चूहों का जोर कम हुआ, तब कहीं नवाब साहब को मकान के अंदर बैठने की जगह मिली । सनका चूहों का रोजगार एकदम ही खत्म हो गया ।

नवाब उसके दे बसली खाल की सेठकी से पाँच सौ रुपए तो एँठ हाँ लिए, सगर उज्जैन से बर्फ रकम दुबारा चूहों का खरीदारी में खर्च हो चुकी थी। शर्की रुखा खानगी खर्च में आ गया। नवाब माहक कि जेदा में तीन-तीन हो गए !

एक रोज घर के अँगन में बैठे तुझका गुड़गुड़ा रहे थे कि बेगम साहबा ने पूछा—“कहिए, अब क्या सोचा है आपने ? घर का खर्च तो चलाए नहीं चलता, कहीं से एक पैसे की आमदनी नहीं !”

नवाब साहब ने एक ठंडी साँस लेकर जवाब दिया—
“अल्लाह मालिक है -- वही कोई ज़रिया निका-
लेगा !”

“ठीक है हाथ पर हाथ धरे बैठे रहिए खुदा के सहारे ! मुँह में नेवाका पहुँच ही जायगा—हाय रा किस्मत ! क्या सूझी थी चूहों का रोजगार करने की, सारे घर का ही सकाया हो गया !”

“ये सब वक्त के राग हैं, कुछ भी कहो। उस रोजगार में ऐब क्या था ? जुबेदा बच्ची उस रोज चूहों का कैदखाना अगर

न खोलती, तो हमें यह दिन देखना ही क्यों पड़ता ! हज्जारों की रकमें रोजाना घर बैठे लोग दे जाते ।”

“मगर अब होगा क्या ? ज़मींदारी भी साफ़, दीगर कोई सिलसिला नहीं, पेट भरने का सवाल सामने है । कुछ सोचा है आपने ?”

“सोच-ही-सोच में तो घुलता जा रहा हूँ दिन-रात !” इतना कहकर नवाब साहब उठे, और बाहर बैठक में चले गए ।

वहाँ आराम-कुरसी पर लेटकर उन्होंने आँखें बंद कर लीं, और गहरे खयालों में डूब गए । एकाएक उधर से सड़क पर सिनेमा का इशतिहार बाँटती हुई मोटर-लॉरी निकली, जिस पर ग्रामोफोन बज रहा था, और लाउड स्पीकर के ज़रिए उसकी आवाज़ तेज़ और साफ़ सुनाई देती थी । नवाब साहब सोचने लगे—कैसा तरीक़ा निकाला है इशतिहारबाज़ी का ! वाक़ई इशतिहारबाज़ी भी एक हुनर है, मगर हुनर समझकर दिमाग़ लगाया जाय इसमें तब । और रोज़गार-पेशा लोग इशतिहारबाज़ी में ही हज्जारों खर्च कर देते हैं ! बस, ज़रा-सी अक़ल की ज़रूरत है । नए-नए तरीक़े अख़्तियार किए जायँ इशतिहारबाज़ी के—लाखों के वारे-न्यारे हैं फिर तो !

खयाली समुद्र में वह इसी तरह डूबते-उतराते जाने क्या मनसूबे बाँध रहे थे कि इतने में उनके चेहरे पर मुस्कराहट

आ गई। वह कुरसी से उछल पड़े, और लपककर, भीतर आँगन में पहुँचकर बोले—“कहीम की मा ! बस काम फतेह ! मुँह मीठा कराओ !”

बेगम चौंक पड़ी—नवाब साइब के दिमारा में फितूर पैदा हो जाने का उनका शक पक्का हो गया, मगर बोलीं—“बैठे-बैठे और कोई स्कीम बना डालो क्या ?”

“हाँ, है अभी स्कीम ही, कह तो दिया, अमल में आ जाय, तब की बात है।”

“अब की बार तो घर में पैसा भी नहीं है। कैसे चालू करोगे अपनी स्कीम ?”

“रुपए की जरूरत ही नहीं होगी अब की बार।”

“अच्छा ! ऐसी कौन-सी स्कीम है ? जरा बताइए तो।”

“अब की बार की स्कीम धोबियों के पेशे से ताल्लुक रखती है।”

“उसमें क्या होगा ?”

“बस, घर बैठे ही आएगी रकम।”

“अरे, बहुत डींग न मारो।” बेगम ने ताने के लहजे में कहा।

“तुम गलत समझती हो, तो समझो; मगर उसका नतीजा बक्त पर देख लेना।”

“अच्छा खैर, कोई मतलब नहीं हमें। स्कीम कब तक चालू होगी तुम्हारी ?”

“बस, अब तुम उसे चालू हुई ही समझो; देर है, तो बिल्कुल एक-आध दिन की ही।”

“तो चालू करो, देखूँ तुम्हारा यह भी तमाशा।”

नवाब साहब हवे की से बाहर निकल आए।

उन्होंने अखबार में नोटिस छपाया कि हमें सुपरवाइजरों की जरूरत है, तनख्वाह हस्त लियाकत दी जायगी। अब क्या था, दरखवाशों पर दरखवाशें आने लगीं। लखनऊ के ही बहुतेरे बेहतर लोग उनकी सेवा में पहुँचे। नवाब साहब ने हर एक की पर्जी स्वीकार कर उन्हें हाजिर होने का हुक्म दे दिया। जो भी हाजिर हुए, उन्हें समझाया कि आप लोग हर शहर, हर कस्बे में दौग करके जल्द-से-जल्द एक फेहरिस्त तैयार करने की कोशिश करें, जिसमें वहाँ के कपड़े धोने का पेशा करनेवालों का पूरा-पूरा नाम और पता हो।

बाहर का कमरा दफ्तर बना दिया गया।

हर शख्स को एक-एक जिले का सुपरवाइजर बनाकर उन्हें अपने-अपने काम पर जाने के लिये नवाब साहब ने हुक्म सुना दिया।

एक मुलाजिम ने पूछा—“आपने तनख्वाह नहीं खोली, कितनी-कितनी दी जायगी हम लोगों को?”

यह फ़ैसला तो तब हो सकेगा, जब आप लोग अपना-अपना काम कर हमारे पास तकसील भेजेंगे।” नवाब साहब ने शानदार लहजे में जवाब दिया।

“अच्छा, हम लोगों को ज़ाद राह क्या मिलेगा ?”

“अभी कुछ नहीं मिल सकेगा, क्योंकि यह काम बड़ी जाँफिशानी का है। मुझे भी तो देखना है कि आप लोग इसे बाकायदा अंजाम दे सकेंगे या नहीं। अभी अपने पास से खर्च करो। जिन लोगों का काम बेहतर होगा वे मुस्तकिल कर दिए जायँगे, और आइंदा तनख्वाह में यह सारा खर्च जोड़ दिया जायगा।”

इस हुक्म को सुनकर बहुतेरे तो खिन्न हुए। जो बिलकुल बेकार थे, और जिन्हें संसार में कहीं भी कोई नौकरी नहीं मिल रही थी, वे बेचारे अपने-अपने घरों से कुछ रुपयों का इंतजाम करके वापस आ गए, और नवाब साहब के तजवीज किए हुए जिलों पर तैनात होकर चल दिए।

सहर में काफ़ी हलचल थी कि नवाब लटकन नहीं मालूम क्या करने जा रहे हैं कि बीसों सुपरवाइज़र इधर-उधर भेजकर धोबियों की फ़ेहरिस्ते बनवा रहे हैं। किसी की समझ में न आ रहा था। लोग अपने-अपने ख़याल दौड़ा रहे थे। मगर सही नतीजा निकालना किसी के बस की बात न थी।

जो कमरा दफ़्तर बनाया गया था, उसमें भी एक क्लर्क साहब तैनात किए गए थे, ताकि बाहर की आई हुई डाक का मुनासब जवाब दें, और आमदा कागज़ात को बाक्तायदा फ़ाइल करें।

सुपरवाइज़र लोग जो बाहर गए, वह भी बेचारे बड़ी मेहनत से अपनी फ़ेहरिस्त मुकम्मिल करने की धुन में लग गए। उन पर लाज़िम किया गया था कि वे हर ज़िले से कम-से-कम पंद्रह सौ की तादाद पूरी करके एक महीने में भेजें। हर सातवें दिन अपनी कारगुजारी का नक्शाना मुरत्तब करके फ़ौरन् रवाना करें।

सुपरवाइज़रों को बाज़-बाज़ जगह बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ा।

एक साहब किसी धोबी के घर पहुँचे, पूछा—“तुम्हारा नाम क्या है जी ?”

“मोहन ।” धोबी ने जवाब दिया ।

“तुम्हारे बाप का नाम ?”

“तुम्हें बाप-दादे के नाम से क्या ग्ररञ्ज ?” धोबी ने ज़रा अकड़कर कहा ।

“आखिर बताने में कोई हर्ज है क्या ?”

“नहीं बताते ? किसी का डर ? हमें फ़ायदा क्या बताने में ?”

“फ़ायदे की ही बात है भाई !” सुपरवाइज़र ने नरमी से कहा ।

“अच्छा, बोलिए, क्या होगा फ़ायदा ?”

सुपरवाइज़र बेचारे को तो कुछ मालूम ही न था, बतलाता क्या । बोला—“इस बात का फ़ायदा तुम्हें आगे चलकर खुद मालूम हो जायगा ।”

“चलो-चलो, अपनी राह नापो ।” धोबी ने ज़रा बिगड़कर कहा—“फ़ायदा भी होगा, तो आगे चलकर ! अभी से बता नहीं सकते ?”

“अरे भाई ! कहा मानो, बड़े फ़ायदे की चीज़ है ।”

“क्या फ़ायदे की चीज़ है ? बोलो, मेरा ब्याह करोगे क्या ?” धोबी ने गर्म होकर कहा—“है कोई घर में तुम्हारे बहन ?”

“देखो, आदमियत से बात करो जी । बेहूदा क्यों बकते हो ?”

सुपरवाइजर ने तेवर बदलकर कहा—“अगर ऐसे ही गर्म हो, तो कर लो न अपनी ही बहन से शादी।”

“अच्छा, खैरियत चाहो, तो उतरो चबूतरे से नीचे।” धोबी ने डंडा उठाते हुए कहा—“नहीं तो अभी कर दूँगा सिंग के दो ठुकड़े ! ऊपर से गाली देता है बदजात !”

“बदजात तू और तेरा बाप ! सीधे मुँह बात करना नहीं जानता ?”

यों कहते हुए सुपरवाइजर साहब चबूतरे से नीचे उतरकर लंबे पड़े।

यों ही करीब-करीब दस-पाँच को टेढ़े-मे-टेढ़े धोबियों का मुक्ताबिना करना पड़ा। बाज़-बाज़ तो बेचारे धोबियों के हाथों पिट भी गए। मगर बेकारी बुरी बना ! अगर नौकरी छोड़े देते हैं, तो कल को कहाँ धरी है ? बेचारे एक जगह कुट-पिटकर दूसरी जगह चले जाते, और फेहरिश्त मुकम्मिल करने की किक्र में पड़ जाते !

अब तो नवाब साहब के नाम डाक-पर-डाक आने लगी। दफ्तर का काम भी चालू हो गया।

कुछ लोगों ने पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई कि नवाब साहब का भंडाफोड़ हो, और खुफिया राजा खुले।

एक सब-इंस्पेक्टर साहब ने भी पहुँचकर उनके दफ्तर की कार्रवाई का मुआइना किया, फिर नवाब साहब से

पूछा—“क्या मामला है नवाब साहब ! कैसी बन रही हैं ये फेहरिस्तें ?”

“यह बात अभी बताई नहीं जा सकती, थानेदार साहब !”

“आखिर कोई वजह ?”

“हाँ !”

“क्या ?”

“अभी बताने में मेरा किया-धरा सब बेकार हो जायगा ।”

“कैसे ?”

“आप नहीं समझने । राज खुल जाने में मेरा नुकसान है ।”

“वाह साहब, वाह ! खब रही !”

“बल्लाह, सब जानिए, झूठ नहीं कहता ।”

“तो कुछ सरकार के खिलाफ तो नहीं है मामला ?”

थानेदार साहब ने गर्मजोशी के साथ कहा—“आपको बताना पड़ेगा ?”

“समझने को आप कुछ भी समझें, मगर मैं बताऊँगा नहीं । हाँ, सरकार के खिलाफ कुछ नहीं है ।”

“कैसे किया जाय यक़ीन आपकी बातों पर ?”

“अगर मेरी बात पर यक़ीन नहीं होता, तो मञ्चूरी है ।”

“यह भी तो सोचें आप ! आखिर मैं इस बारे में रिपोर्ट लिखूँ, तो क्या ?”

“मैं जो कहता हूँ, वही लिख दीजिए । मामला किसी के

खिलाफ नहीं है। मगर उसका राज वक्त आने पर ही खुलेगा।”

“आखिर वह वक्त आएगा कब ?”

“सिर्फ दो महीने बाद।”

“तौबा, तौबा ! तब तक कागजात कैसे पड़े रह सकते हैं ?”

“तो जो मिज्जाज चाहे, कीजिए।”

“अच्छी बात है।” थानेदार साहब उठते हुए बोले।

थानेदार ने अपनी रिपोर्ट मुकम्मिल करके साहब कप्तान के हुजूर में भेज दी—“नवाब अब्दुलक़दीर उर्फ नवाब लटकन किसी पेचीदा प्रोपेगेंडा की तैयारी में हैं। उनके पचासों आदमी बाहर काम कर रहे हैं। यहाँ दफ्तर में भी एक क्लर्क काम कर रहा है। बाहर से आई हुई फहरिस्तें दफ्तर में फाइल हैं। नवाब साहब किसी तरह पर राज खोलने के लिये राजी नहीं हैं। जो हुक्म आली हो, कार्रवाई अमल में लाई जाय।”

नवाब लटकन पर मुकदमा कायम हो गया। पेशी हुई। नवाब साहब ने बयान किया—“हाँ, मैंने एक दफ्तर खोल रक्खा है, मगर वह हमारे एक रोज़गार के सिलसिले में है।”

अदालत ने सवाल किया—“वह रोज़गार कैसा है आपका ?”

“यह मैं अदालत को अभी नहीं बता सकता।”

“आखिर क्यों ?”

“बताने में मेरा भंडाफोड़ हुआ कि बिजनेस चौपट !”

“अदालत नहीं समझती कि तुम्हारा क्या नुक़सान होगा ?”

“इसे तो मैं जानता हूँ। अगर मैंने राज़ खोल दिया, तो मेरा रोज़गार ही न चल सकेगा।”

“अदालत फिर भी नहीं समझी कि आप रोज़गार क्यों नहीं चला सकेंगे ?”

“बात यह है हुज़ूर ! कि अगर मैंने अपनी स्कीम का राज़ खोल दिया, तो मैं ही कामयाब क्यों होने लगा ? बीगर लोग भी वैसा ही नहीं करने लगेंगे क्या ?”

“इससे आपको मतलब ? जो रोज़गार करेगा, वही नफ़ा उठाएगा।”

“नहीं-नहीं, मैं राज नहीं बताऊँगा हुजूर ! सोचने-समझने में तो दियाग मैंने खर्च किया, औ ! नफा उठाएँ दूसरे ! ऐसा नहीं हो सकता ।”

“खैर, कुछ भी सही, बगै ! राज खोलें आपको मुख्तिसी नहीं हो सकती । हर सूखत में बताना पड़ेगा आपको ।”

“अगर अदालत मुझे मजबूर करती है, तो एक शर्त है ।”

“क्या ?”

“मैंने जंग भी सुरखाइ घर तेनात किए हैं, उनकी तनख्वाहें मेरे सर वाजिब हैं । उन्हें तनख्वाहें देना का वायदा अदालत को करना होगा ।”

“आखिर क्यों ?”

“मैं राज खुल जाने के बाद रोजगार नहीं करूँगा । जब रोजगार ही न हो सकेगा, तो तनख्वाहें कहाँ से अदा होंगी ?”

कुछ देर तक अदालत खामोश रहा, फिर कहा गया—

“खैर, भेद बताइए कि कैसी स्कीम है आपकी ?”

नवाब साहब खाँसते हुए बोले—“हुजूर ! मौजूदा जमाने में इश्तिहारबाजी का कितना जोर है, इसे सभी जानते हैं । इसी की बदौलत मिट्टी भा सोने के भाव बिक जाते हैं । इसी के ज़रिए घास-कूड़ा भी मक्खन के दामों फरोख्त हो जाता है । सारे हिंदोस्तान में हज़ारों ऐसे बड़े-बड़े दूकानदार और तिजारत-पेशा लोग हैं, जो माल तैयार करके उसकी

इश्तिहारबाजी में लाखों रुपए हर साल खर्च कर देते हैं, इसलिये इश्तिहारबाजी भी एक क्रिम का पेशा या रोज़गार बन गया है। कलकत्ते, बंबई में कई एडवर्टाइजिंग कंपनियाँ खुली हैं, जिनका काम ही माकूल उन्नत लेकर दूकानदारों के माल के इश्तिहार लपवाना, बँटवाना है। मगर हुज़ूर ! मच पूछा जाय तो इश्तिहारबाजी एक ऐसी हुनर है, जिसमें काफी दिमाग खर्च करना पड़ता है। नए-नए तरीके सोचनेवाला ही इस हुनर में कामयाबी हासिल कर सकता है। मैंने भी इसी हुनर के मुतअल्लिक एक घितकुल नई स्कीम सोचकर अपना काम शुरू किया था। मेरी स्कीम ऐसी थी कि मैं दूकानदारों के माल के इश्तिहार अमोर, गरीब, बूढ़े, बच्चे, जवान, मर्द, औरत सबके हाथों में गारंटी के साथ पहुँचा देता और वह भी हजार-दो हजार नहीं, करोड़ों की तादाद में ! मुझे अकसोस है कि अदालत मुझे वह राज़—मेरे पेशे, मेरे रोज़गार, मेरे हुनर का वह बेशकीमत जौहर—जाहिर करने को मजबूर कर रही है !”

नवाब साहब खामोश हो गए। हाकिम अदालत ने कहा—
“आप ठहर क्यों गए ? अपनी स्कीम पूरी कह डालिए।”

नवाब साहब धीरे-धीरे फिर कहने लगे—“हुज़ूर ! मैंने सैकड़ों सुपरवाइज़र तैनात करके सारे सूबे में, जिले-जिले, गाँव-गाँव में, भेज रखे हैं, उनको लंबी-चौड़ी तनखवाहों पर मुक़र्रर किया है—सिर्फ़ हर जगह के धोबियों की फ़ेहरिस्त

मय नाम-पते के तैयार करके यहाँ भेजने के लिये। आदालत पूछ सकती है कि इस फेहरिस्त से फायदा ? फायदा भी सुनिए। मैं हिंदोस्तान-भर के दूकानदारों के इश्तिहार बँटवाने का ठेका सस्ते दामों पर लेकर थोड़े-थोड़े इश्तिहार हर एक धोबी के पास भिजवाया करूँगा। धोबी जिस वक़्त लोगों के कपड़े धोकर उन पर लोहा करने लगेगा, तो उन कपड़ों की हर एक जेब में, हर एक तह में, एक-एक मुख्तलिफ़ चीज़ का इश्तिहार नंबरवार रखता जायगा। लोहा करने के बाद वह उन कपड़ों को अपने गाहकों के पास पहुँचा देगा।”

नवाब साहब फिर चुप हो गए। हाकिम आदालत को उनके बयान में बड़ी दिलचस्पी पैदा हो गई। उन्होंने कहा—
“फिर क्या होगा नवाब साहब ?”

नवाब लटकन बोले—“हुज़ूर ! उसके बाद तो मज्जा आ जायगा। एक अपनी ही मिसाल ले लें हुज़ूर ! दस बजे ठीक आपने नए धुलकर आए कपड़े पहनने शुरू किए, कबहरी आने की तैयारी में—उस वक़्त आपने पैंट पहना, जेब में हाथ डाला—एक इश्तिहार बरामद हुआ, जिस पर लिखा है—“हकीम आफ़ताबहुसैन का ईजादकर्दा ममीरे का सुर्मा।” दूसरी जेब से दूसरा इश्तिहार निकलता है—‘कविराज के० पी० डे० का आश्चर्य मलहम’, ‘सौ मर्जों की अक्सीर दवा।’ क़मीज़ की पॉकेट में भी कुछ खर-खराता है—आप हाथ डालकर निकालते हैं—क्या ? एक

इश्तिहार, जिसमें लिखा है— नामर्दी का शर्तिया इलाज—
जौहरे-मोतिया ।’ फिर आपके कोट पहनने की बारी आती
है। कोट की मुख्तलिफ जेबों से ‘अक्सौर दंदाँ’ ‘बाल-
सफा साबुन’, ‘विटेक्स’, ‘डोंगरे का बालामृत’ वगैरा-
वगैरा दीगर इश्तिहार बरामद होते हैं ! कहिए, कैसा
रहा इश्तिहारबाजी का तरीका ! मुकम्मिल, नया और
सबसे ज्यादा कामयाब !!”

सारी अदालत हँस पड़ी ? हाकिम ने कहा—“वाकई !
आपने तरकीब तो बेहतरीन सोची, मगर और कोई राज
तो नहीं ?”

“और कोई राज नहीं, खुदा की कसम खाकर कहता हूँ
हुज़ूर !” नवाब साहब ने जवाब दिया ।

“कागजात आपके साथ हैं क्या ?”

“हाँ, हुज़ूर ।”

“लाइए, पेश कीजिए ।”

नवाब साहब ने रजिस्टर खोलकर पेश करते हुए कहा—
“देखिए हुज़ूर, सारे सफ़ों में धोबियों के नामो पते ही
मुकम्मिल लिखे हुए हैं ।” सुपरवाइज़रों के हफ़तावार नक़शे
पेश करते हुए कहा—“देखिए हुज़ूर, ये नक़शे मेरे मुला-
जिमान ने भेजे हैं, जो यहाँ फ़ाइल कर लिए गए हैं ।”

अदालत ने ख़ूब ग़ौर कर लेने के बाद मुक़दमें की समा-
प्त को ख़त्म कर नवाब साहब को रिहाई दे दी ।

महीना भी ख़त्म होने पर ही था। इधर नवाब साहब ने अपनी स्कीम खुल जाने की वजह से काम ठप कर दिया, उधर सारे सुपरवाइजर हाज़िर होकर तनख्वाह के मुतलाशी हुए।

“अब आप लोगों को तनख्वाह अदालत से मिलेगी। वहीं जाकर अपनी-अपनी दरखास्तें दें आप लोग।” नवाब साहब ने सबसे कहा।

“हम किसी दूसरे को क्या जानें?” हर शख्स ने ऐसा ही जवाब दिया।

“मगर अदालत वादा कर चुकी है आप सबको तनख्वाह देने की।”

गरज़ कि यों ही बक-भ्रष्ट करने के बाद वे सब बेचारे सर पीट कर चले गए। नवाब साहब उन लोगों को तनख्वाह देते भी कहाँ से। रोज़गार अपना बंद ही कर चुके थे। कहीं से पैसे की आमदनी थी नहीं, उनकी सारी स्कीम ही फ़ेल हो चुकी थी।

उपसंहार

नजमा को पंजाबी के हाथ बेचकर नूरु फ़रार हो गया था। नजमा उसी पंजाबी के साथ रहने लगी। उसके दो बच्चे भी हुए, मगर वह सुखी न रही। पंजाबी से झगड़ा होने पर वह पेशावर से बच्चों को लेकर भाग खड़ी हुई। सुना जाता है, गाज़ियाबाद के किसी जुलाहे के घर बैठ गई है।

और, नई बेगम साहबा—नवाब लटकन की फ़ैशनेबिल लेडी—वह नज़ीरा के साथ भागकर बंबई पहुँच गई थीं। नज़ीरा से एक महीने बाद उनको अलाहिदा होना पड़ा, क्योंकि वहीं की एक फ़िल्म-कंपनी में उनको नौकरी मिल गई थी। वह ऐक्ट्रेस बन गई हैं, नाम रक्खा है—माधवी !

फ़हीम के बारे में ख़बर आई थी कि वह फ़ौज में भरती होकर आफ़्रिका चला गया। वहाँ से फिर उसका कुछ हाल नहीं मिला। ज़िंदा है या मर गया ! उसके हिस्से की जायदाद के मुंजिम हैं एक वशीद मियाँ, जो जायदाद की आमदनी से अपना घर दोनो हाथों से भर रहे हैं !

हमारे नवाब साहब की हालत बिलकुल गिर जाने के बाद उनकी बेगम यानी फ़हीम की मा ने मायके में अड्डा जमाया। नवाब साहब ने अब स्कीमें बनाना बंद कर दिया है।

विक्टोरिया स्ट्रीट पर उन्होंने सिगरेट, बीड़ी, पान की एक छोटी-सी दूकान खोल ली है। शाम तक चार पैसे मिल ही जाते हैं। कभी-कभी ठंडी साँसें लेकर लोगों को अपनी जिंदगी की दास्तान सुना दिया करते हैं। उनके पुराने यार-दोस्त अब नज़दीक फटकते भी नहीं। यह भी किस्मत का फेर है।
